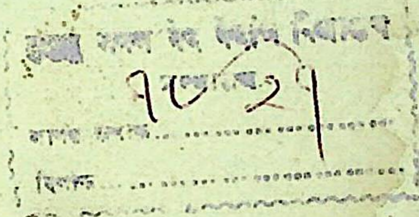
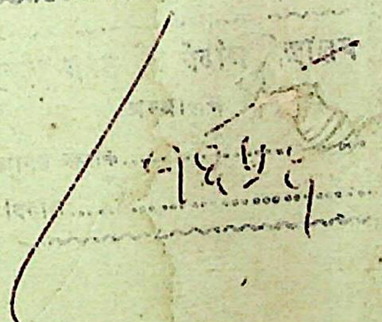
नर और नारी

(श्रीमां व श्रीअरविंदके लेखोंसे संकलित)





श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी

माता श्री तथा अरविंद
[illegible]

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

प्रथम संस्करण अगस्त १९७६

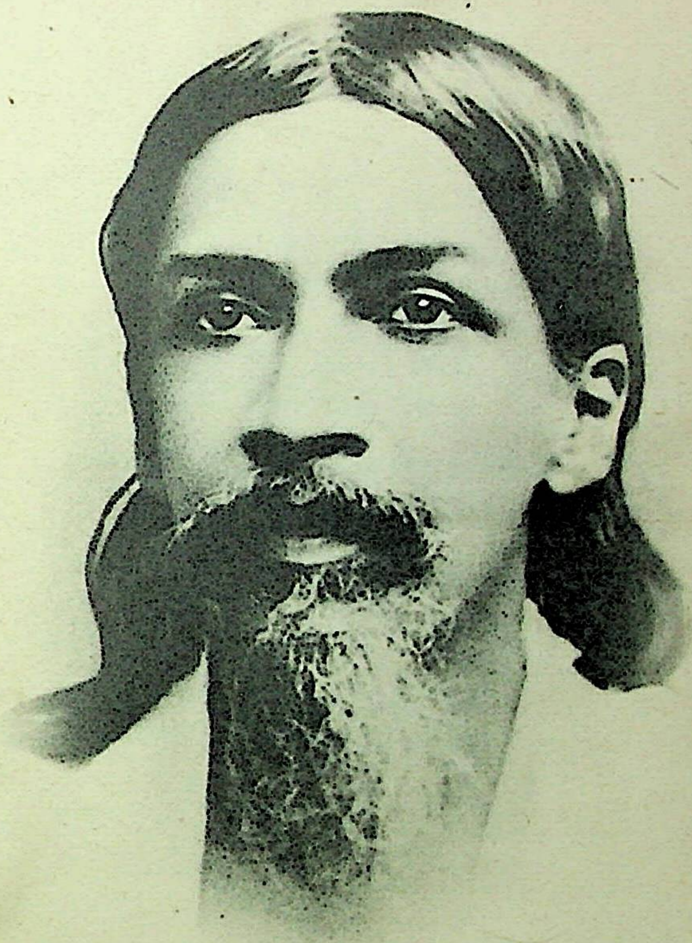
प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

विषय-सूची

श्रीमातृवाणी :

श्रीअरविंदवाणी :





दासता

जबतक कि स्त्रियां अपने-आपको स्वतंत्र न करें तबतक कोई कानून उन्हें स्वतंत्र नहीं कर सकता।

कौन-सी चीज है जो उन्हें दासी बनाती है?

१ — पुरुष और उसके बलके प्रति आकर्षण,
२ — घरेलू जीवन और सुरक्षाकी कामना;
३ — मातृत्वके लिये आसक्ति।

अगर स्त्रियां इन तीन दासताओंसे मुक्त हो सकें तो वे सचमुच पुरुषोंके बराबर हो जायंगी।

पुरुषकी भी तीन दासताएं हैं :

१ — स्वामित्वकी भावना, शक्ति और आधिपत्यके लिये आसक्ति,
२ — नारीके साथ लैंगिक संबंधकी इच्छा,
३ — विवाहित जीवनकी छोटी-मोटी सुविधाओंके लिये आसक्ति।

अगर पुरुष इन तीन दासताओंसे मुक्ति पा लें, तो वे सचमुच स्त्रियोंके बराबर हो जायेंगे।

अगस्त ५१ —श्रीमां

जिम्मेदार कौन ?

एक बार एक संभ्रांत और सुशिक्षित सज्जन माताजीसे अपने परिवारके बारेमें बात कर रहे थे। बात-ही-बातमें उन्होंने कह दिया, "मेरी स्त्री बिलकुल पशु है।" माताजी यह सुनकर बहुत गंभीर हो गयीं और उन्होंने पूछा, "तुम्हारा ब्याह हुए कितने वर्ष हो गये ?"

"जी, लगभग पच्चीस वर्ष।"

"तो पच्चीस वर्ष हो गये तुम्हें अपनी पत्नीके साथ रहते। जरा बताओ तो, इतने वर्षोंमें तुमने उसे "मनुष्य" बनानेके लिये क्या-क्या किया ? तुम अपने बच्चोंको पढ़ाने-लिखानेके लिये कितना खर्च करते हो, कितना समय लगाते हो, तुमने इसका एक प्रतिशत भी खर्च किया उसकी शिक्षाके लिये ? अगर तुम हर रोज उसे अधिक नहीं केवल एक घंटा ही देते तो पच्चीस वर्षोंमें वह कितना कुछ पढ़-लिख जाती ! लेकिन तुमने इस विषयमें कभी कुछ सोचनेकी भी जरूरत नहीं समझी। तुमने उसे केवल खाना पकाने और बच्चे पैदा करनेकी मशीन समझा और अब बड़ी शानसे कह रहे हो कि वह पशु है। अगर सचमुच वह पशु है भी तो इसकी पूरी-पूरी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है।"

स्त्रियोंकी समस्या

मैं आज स्त्रियोंकी समस्याके विषयमें कुछ कहना चाहती हूं। यह समस्या देखनेमें तो उतनी ही पुरानी है जितनी कि मनुष्यजाति, परंतु अपने मूलमें यह इससे भी बहुत अधिक पुरानी है। कारण, यदि कोई एक ऐसे नियमको ढूंढना चाहे जो इसका नियमन तथा समाधान करता है, तो उसे विश्वके उद्‌गमतक, बल्कि सृष्टिके भी परे जाना होगा।

कुछ प्राचीनतर परंपराएं, संभवत: प्राचीनतम परंपराएं विश्वकी उत्पत्तिका क़ारण सर्वोच्च सत्ताका वह संकल्प बताती हैं जो आत्मनिष्ठ रूपमें अपने-आपको व्यक्त करनेके लिये होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषयीकरणका पहला कार्य था सृजनात्मक चेतनाका प्रकट होना। यह सत्य है कि ये प्राचीन परंपराएं अभ्यासवश ही सर्वोच्च सत्ताकी पुल्लिगके रूपमें और चेतनाकी स्त्रीलिंगके रूपमें चर्चा करती हैं तथा इस आदि भावको ही पुरुष और स्त्रीके विभेदका स्रोत बना देती हैं; इसीके द्वारा वे पुरुषको स्त्रीपर प्रधानता भी दे देती हैं, जब कि बात यह है कि अभिव्यक्तिसे पहले दोनों ही एक, अभिन्न तथा सहवर्ती थे। पुरुष-सत्ताने ही पहला निर्णय किया और उसीने उस निर्णयको चरितार्थ करनेके लिये स्त्री-सत्ताको जन्म भी दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि स्त्री-स़त्ताके बिना सृष्टि-कार्य नहीं हो सकता, तो पुरुष-सत्ताके प्रारंभिक निश्चयके बिना स्त्री-सत्ताका आविर्भाव भी नहीं हो सकता।

निश्चय ही यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या यह व्याख्या कुछ अत्यधिक मानवीय नहीं है। किंतु सच्ची बात यह है कि समस्त व्याख्याएं ही, जो कि मनुष्य कर सकता है, कम-से-कम अपने बाह्य स्वरूपमें, अवश्य ही मानवीय होंगी। कारण, कुछ असाधारण व्यक्ति उस अज्ञेय और अचिंत्यकी ओर अपनी

आध्यात्मिक चढ़ाईमें मानव प्रकृतिसे ऊपर जा सके हैं तथा अपनी खोजके ध्येयके साथ, एक उच्च तथा एक प्रकारकी अकल्पनीय अनुभूतिमें एक हो सके हैं, किंतु ज्योंही उन्होंने अपनी उपलब्धिसे दूसरोंको लाभ पहुंचाना चाहा, उन्हें उसे सूत्रबद्ध करना पड़ा और उनके सूत्रको तब ग्राह्य बननेके लिये मानवीय और प्रतीकात्मक होना पड़ा।

फिर भी यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या ये अनुभव और इनके द्वारा प्रदर्शित सत्य प्रधानताके उस भावके लिये उत्तरदायी हैं जो पुरुष स्त्रीके प्रति हमेशा बनाये रखता है, या, इसके विपरीत सामान्य रूपसे प्रचलित यह प्रधानताका भाव ही अनुभूतियोंके उस सूत्रबद्ध रूपके लिये उत्तरदायी है।

बहरहाल, यह तथ्य तो निर्विवाद ही है कि पुरुष अपने-आपको बड़ा समझता है तथा अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है, उधर स्त्री अपने-आपको उत्पीड़ित अनुभव करती है और फिर परोक्ष या अपरोक्ष रूपमें विद्रोह करती है। और इन दोनोंका यह झगड़ा युग-युगसे चला आ रहा है; यह मूलमें एक ही है, पर अनगिनत रूप-रंगोंमें प्रकट होता है।

यह तो मानी हुई बात है कि पुरुष सारा दोष स्त्रीपर थोपता है और उसी प्रकार स्त्री सारा दोष पुरुषपर थोपती है। पर वास्तवमें दोष समान रूपसे दोनोंका मानना चाहिये और दोनोंमेंसे किसीको भी अपने-आपको दूसरेसे बड़ा माननेका गर्व नहीं करना चाहिये। बल्कि जबतक प्रधानता और हीनताका यह विचार दूर नहीं कर दिया जायगा तबतक कोई भी वस्तु या कोई भी व्यक्ति इस भ्रांतिको दूर नहीं कर सकेगा जो मानवजातिको दो विरोधी शिविरोंमें बांट देती है, और न तबतक समस्याका कोई समाधान ही हो पायेगा।

इस समस्यापर बहुत कुछ कहा और लिखा गया है। इसपर इतने दृष्टिकोणोंसे विचार किया गया है कि इसके सब पक्षोंका विवे-

चन करनेके लिये एक पोथा भी पर्याप्त न होगा। साधारणतया सिद्धांत बहुत अच्छे होते हैं और हर एकके अपने-अपने गुण भी होते हैं, किंतु व्यवहारमें ये उतने सुखदायक नहीं सिद्ध होते। मुझे नहीं मालूम कि सफलताके स्तरपर हम पाषाण-युगसे कुछ आगे बढ़े हैं या नहीं। कारण, पारस्परिक संबंधमें पुरुष और स्त्री एक-दूसरेके पूरी तरह निरंकुश स्वामी और साथ ही कुछ दयनीय दास भी हैं।

हां, सचमुच दास, क्योंकि जबतक मनुष्यमें इच्छाएं हैं, अभिरुचियां और आसक्तियां हैं, तबतक वह इन वस्तुओंका और उन व्यक्तियोंका भी दास है जिनपर वह इन इच्छाओंकी पूर्तिके लिये निर्भर रहता है।

अतएव, स्त्री पुरुषकी दासी इसलिये है कि वह पुरुष और उसके बलके प्रति आकर्षण अनुभव करती है, उसके अंदर 'घर' बसानेकी इच्छा होती है, वह घरसे प्राप्त होनेवाली सुरक्षाको चाहती है और अंतमें उसके अंदर मातृत्वके प्रति मोह भी होता है। इधर पुरुष भी स्त्रीका दास है, अधिकार-भावनाके कारण, शक्ति और प्रभुत्वकी तृष्णाके कारण, काम-वासनाकी तृप्तिकी इच्छा तथा विवाहित जीवनकी छोटी-मोटी सुख-सुविधाओंके प्रति आसक्तिके कारण।

इसलिये कोई भी कानून स्त्रीको तबतक बंधनमुक्त नहीं कर सकता जबतक वह स्वयं ही बंधनमुक्त न हो जाय। इसी प्रकार पुरुष भी अधिकार जमानेकी आदतोंके होते हुए तबतक दासतासे मुक्त नहीं हो सकता जबतक वह अपने अंदरकी सारी दासतासे मुक्त न हो जाय।

यह गुप्त संघर्षकी अवस्था, जिसे प्रायः कोई स्वीकार नहीं करता, किंतु जो अच्छे-से-अच्छे दृष्टांतोंमें भी सदा अवचेतनमें उपस्थित रहती है, तबतक अनिवार्य प्रतीत होती है, जबतक मनुष्य पूर्ण चेतनाके साथ तादात्म्य स्थापित करनेके लिये, सर्वोच्च सत्ताके साथ एक होनेके लिये, अपनी सामान्य चेतनासे ऊपर नहीं उठ जाते।

कारण, जब तुम इस उच्च चेतनाको प्राप्त कर लेते हो तो देखते हो कि पुरुष और स्त्रीका भेद केवल शारीरिक भेद रह जाता है।

हो सकता है कि वस्तुतः, प्रारंभमें पृथ्वीपर एक विशुद्ध पुल्लिंग और एक विशुद्ध स्त्रीलिंगका प्रतिरूप रहा हो, प्रत्येकके अपने-अपने स्पष्ट भिन्न प्रकारके गुण रहे होंगे, किंतु समय पाकर अनिवार्य मिश्रण, आनुवंशिकता, पुत्रोंका मातासे सादृश्य और पुत्रियोंका पितासे सादृश्य, सामाजिक उन्नति, एक ही व्यवसाय — इन सबने मिलकर हमारे समयमें एक विशुद्ध प्रतिरूपको पाना दुर्लभ कर दिया है। सब पुरुष अपने कई पक्षोंमें स्त्री-सदृश्य हैं। इसी प्रकार सब स्त्रियां भी कई गुणोंके ख्यालसे, विशेषतया आधुनिक समाजमें, पुरुष-सदृश हैं। दुर्भाग्यसे, शारीरिक आकृतिके कारण झगड़ेकी आदत चली आ रही है, बल्कि प्रतिद्वंद्विताकी भावनाके कारण शायद बढ़ भी गयी है।

पुरुष और स्त्री दोनों ही अपने अच्छे क्षणोंमें लिंग-भेद भूल जाते हैं, किंतु जरा-सी उत्तेजना पाते ही वह भेद फिरसे आ जाता है; स्त्री अनुभव करने लगती है कि वह स्त्री है और पुरुष तो यह जानता ही है कि वह पुरुष है और झगड़ा फिर अनिश्चित अवधिके लिये, किसी-न-किसी रूपमें, प्रत्यक्ष या परोक्ष स्तरपर चलने लगता है और प्रकट रूपमें जितना कम स्वीकार किया जाता है उतना ही कटु होता है। कोई पूछ सकता है कि क्या यह झगड़ा तबतक ऐसा ही न चलता रहेगा जबतक पुरुष और स्त्री न रहकर ऐसी जीवंत आत्माएं नहीं बन जाते जो लिंगरहित शरीरोंमें अपने एक ही अभिन्न स्रोतको अभिव्यक्त करती हों।

कारण, हम एक ऐसे संसारका स्वप्न देखते हैं जिसमें अंततः ये सब विरोध विलीन हो जायंगे, जहां केवल एक ऐसी सत्ता ही जीवित रह सकेगी तथा उन्नतिको प्राप्त होगी जो उस सबका जो मानव सृष्टिमें सर्वश्रेष्ठ है सामंजस्यपूर्ण समन्वय होगी और जो अखंड चेतना एवं क्रियामें, विचार एवं कार्यान्वितिमें, अंतर्दृष्टि एवं सृजनमें एकत्व लाभ कर लेगी।

जबतक समस्याका यह सुखद और आमूल समाधान नहीं हो जाता, भारतवर्ष और बातोंकी भांति इस बातमें भी उन प्रचंड विरोधात्मक भेदोंका देश रहेगा जिन्हें फिर भी एक अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत समन्वयमें परिणत किया जा सकता है।

वस्तुतः, क्या भारतवर्षमें ही उस परम जननीकी अत्यधिक तीव्र भक्ति और पूर्ण उपासना नहीं की जाती जो विश्वको बनानेवाली और शत्रुओंपर विजय पानेवाली है, जो समस्त देवताओं और समस्त जगतोंकी माता है, सकल-वरदायिनी है?

और क्या भारतमें ही हम स्त्री-तत्त्व, 'प्रकृति', अर्थात् 'माया'-की अत्यंत आमूल रूपमें निंदा और उसके प्रति अत्यधिक घृणा प्रदर्शित होते नहीं देखते क्योंकि वह एक विकारजनक भ्रम है तथा समस्त दुख और पतनका कारण है, अर्थात् ऐसी प्रकृति है जो विमोहित और कलुषित करती है तथा व्यक्तिको भगवान्से दूर ले जाती है?

भारतवर्षका सारा जीवन ही इस विरोधसे शराबोर है। वह अपने मन और हृदय दोनोंमें इससे पीड़ित है। यहां, सर्वत्र मंदिरोंमें देवियोंकी मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं, मां दुर्गासे ही भारतवर्षकी संतानें मुक्ति और मोक्षकी आशा करती हैं। और फिर भी एक भारतवासीने ही यह कहा है कि अवतार कभी स्त्रीके शरीरमें जन्म नहीं लेगा, क्योंकि तब कोई विचारवान् हिंदू उसे न पहचान पायगा। पर यह प्रसन्नताकी बात है कि भगवान् इस संकीर्ण सांप्रदायिक भावनासे प्रभावित नहीं होते और न ही इन तुच्छ विचारोंद्वारा प्रेरित होते हैं। जब उनकी पार्थिव शरीरमें अवतरित होनेकी इच्छा करती है तो वह इस बातकी परवाह कम ही करते हैं कि लोग उन्हें पहचानेंगे या नहीं। इसके अतिरिक्त ऐसा प्रतीत होता है कि अपने सब अवतारोंमें उन्होंने विद्वानोंकी अपेक्षा बच्चों और सरल हृदयोंको अधिक पसंद किया है।

जो भी हो, जबतक एक ऐसी नयी जातिको, जिसे प्रजननकी

आवश्यकताके अधीन होनेकी जरूरत न हो और जो सत्ताके दो पूरक लिंगोंमें विभाजित होनेके लिये बाध्य न हो, उत्पन्न करनेके लिये प्रकृतिको प्रेरित करनेवाला नया विचार एवं नयी चेतना प्रकट नहीं हो जाते, तबतक वर्तमान मानवजातिकी उन्नतिके लिये अधिक-से-अधिक यही किया जा सकता है कि पुरुष और स्त्री दोनोंके साथ पूर्ण समानताका व्यवहार किया जाय, दोनोंको एक ही शिक्षा तथा प्रशिक्षा दी जाय तथा दिव्य सत्ताके साथ, जो कि समस्त लिंग-भेदोंसे ऊपर है, सतत संपर्क स्थापित करके समस्त संभावनाओं और समस्त समस्वरताओंके उद्‌गमको प्राप्त किया जाय।

और तब शायद भारतवर्ष जो विषमताओंका देश है, नयी उपलब्धियोंका देश बन जायगा, जैसे यह इनकी परिकल्पनाका पालना रहा है।

२५ जुलाई, १९५६

तुम लोगोंने लड़कों और लड़कियोंके लिये शारीरिक शिक्षणका एक ही कार्यक्रम क्यों रखा है?

कुछ लोग ऐसे हैं जो इसे एक कलंक समझते हैं; कुछ लोग इसें भौतिक, पार्थिव दृष्टिकोणसे एक भयंकर भूल समझते हैं। "लड़कियोंके साथ एक विशेष ढंगसे तथा लड़कोंसे एकदम भिन्न प्रकारसे क्यों नहीं व्यवहार किया जाता? ..." वह महान् तर्क: "...जैसे कि सर्वत्र किया जाता है।"

आह! धन्यवाद! तब हमने आश्रम क्यों बनाया है? हमने शिक्षा-केंद्र क्यों खोला है? यदि सर्वत्र एक जैसी ही चीजें की जाती हैं, हमें उन्हें दुहरानेकी कोई आवश्यकता नहीं है, हम दूसरोंकी अपेक्षा अधिक अच्छे रूपमें उन्हें नहीं कर सकेंगे।

और जब वे मेरे सामने इस तर्कको उपस्थित करते हैं, वे ऐसी कोई बात मुझसे नहीं कह सकते जो मुझे पूरी तरहसे मूर्खतापूर्ण न प्रतीत हो। यह सर्वत्र किया जाता है? बस, यही इसे न करनेका ठीक कारण है; क्योंकि हम यदि वही करें जो दूसरे करते हैं तो कुछ करनेका कष्ट उठानेसे एकदम कोई लाभ नहीं। हम तो यथार्थमें संसारके अंदर कोई ऐसी चीज समाविष्ट करना चाहते हैं जो वहां नहीं है; पर हम यदि संसारके सभी अभ्यासोंको, संसारकी सभी अभिरुचियोंको, संसारकी सभी संरचनाओंको बनाये रखें तो मैं नहीं समझती कि हम पुरानी लीकको छोड़कर कैसे बाहर निकल सकते हैं और कोई नवीन चीज कर सकते हैं।

मेरे बच्चो! मैं तुमसे कह चुकी हूं, हर स्तरमें, हर ढंगसे इसे दुहरा चुकी हूं: यदि तुम वास्तवमें यहां रहनेका लाभ उठाना चाहते हो तो एक ऐसी नयी दृष्टिसे और एक ऐसी नयी समझसे वस्तुओंको देखने और उन्हें समझनेका प्रयत्न करो जो किसी उच्चतर वस्तुपर, किसी गभीरतर, विशालतर वस्तुपर, किसी सत्यतर वस्तुपर, किसी ऐसी वस्तुपर आधारित हों जो अभी यहां नहीं है पर एक दिन होगी। और चूंकि हम इस भविष्यको निर्मित करना चाहते हैं, इसलिये हमने यह विशेष स्थिति ग्रहण की है।

मैं तुम्हें बता दूं कि अपनी स्थितिके याथार्थ्य तथा उसके सत्यके प्रमाण, एकदम स्थूल प्रमाण हमारे पास हैं, पर... वे स्थायी नहीं हैं। क्यों? क्योंकि साधारण चेतनामें वापस गिर जाना अत्यंत आसान है, और सीढ़ीके सिरेपर सर्वदा खड़े रहने और वहां ऊपरसे संसारकी ओर नजर दौड़ानेकी कोशिश करनेसे अधिक कठिन और कुछ नहीं है।

हम प्रकृतिकी आज्ञाओंका अनुसरण करना नहीं चाहते, चाहे इन आज्ञाओंके पीछे उनके अनुवर्तनका लाखों वर्षोंका अभ्यास भी क्यों न विद्यमान हो। और एक बात निश्चित है, जब प्रकृति परिवर्तित होनेवाली वस्तुओंके रास्तेमें आड़े खड़ी होती है तो

उसका तर्क होता है: "ऐसा सर्वदासे होता आया है।" मैं दावेके साथ कहती हूं कि यह सच नहीं है। चाहे वह इसे पसंद करे या न करे, वस्तुएं बदलती हैं, और एक दिन आयेगा जब यह कहा जायगा: "ओह! हां, एक समय था जब यह वैसा था, पर अब यह उससे भिन्न है।"

बस, कुछ समयके लिये, ऐसे ढंगसे जो श्रद्धा और विश्वाससे अब भी संबंध रखता है, इतना-सा मान लो कि हम इस परिवर्तन-को ले आनेकी प्रक्रियामें हैं और हम एक ऐसे बिंदुपर आ गये हैं जहां वस्तुएं एक नया मोड़ और एक नयी दिशा लेने जा रही हैं। तुमसे महज इतना ही मांगा जाता है कि तुम बस थोड़ा-सा विश्वास और भरोसा बनाये रखो और पथ-प्रदर्शनको स्वीकार करो। अन्यथा, ध्यान दो, तुम यहां रहनेका लाभ खो दोगे। बस, इतना ही! और तुम उन्हीं कमजोरियों और उन्हीं आदतोंके साथ वापस चले जाओगे जिन्हें लोग उस जीवनमें देखते हैं जैसा कि इस स्थानसे बाहर है। बस, यही बात है।

तुम सब (लड़कियां) समझती हो मैं थोड़ी कड़ी, थोड़ी कठोर हूं, और आखिरकार मुझे संतुष्ट करना उतना आसान नहीं है! यही कारण है कि तुम बालोंमें अथवा पीछे लटकती पूंछोंमें सुन्दर पतला-सा गुलाबी फीता बांधती हो। मैं, संभवतः थोड़ी निष्ठुरता-पूर्वक कहती हूं: "तुम हास्यास्पद दीखती हो!" क्योंकि तुम समझती हो कि तुम बहुत सुन्दर दीखती हो, पर वास्तवमें इससे तुम हास्यास्पद बन जाती हो। यदि तुम बाहर संसारमें जाना चाहती हो और वहां वैसे ही निवास करना चाहती हो जैसे कि लड़कियां संसारमें निवास करती हैं, और फिर अपने-आपको रूप-रंग देना चाहती हो ताकि दूसरे मोहित हों क्योंकि वही तुम्हारी एकमात्र सुरक्षा और एकमात्र अस्त्र है — ध्यान आकर्षित करना, और लुभाना, और अत्यंत सुन्दर, अत्यंत सम्मोहक होना, तो तुम वैसा करनेके लिये बिलकुल स्वतंत्र हो, उससे मेरा कोई

सरोकार नहीं। परंतु, निस्संदेह, वह सब यहां करना हास्यास्पद है। यह हास्यास्पद है और इससे तुम भी अपने-आपको उस स्तरपर ले आती हो जो सुखद नहीं है।

स्वभावतः ही तुम सब "पुरुष वर्ग"के सामने कहनेके लिये मुझे दोषी ठहरा सकती हो। परंतु मैं इस हास्यास्पदतामें उसे भी शामिल करती हूं, क्योंकि यदि वह वैसा ही न सोचता जैसा कि वह सोचता है, यदि वह वैसा ही अनुभव न करता जैसा कि वह अनुभव करता है और वैसा ही कार्य न करता जैसा कि वह करता है तो तुम सब बहुत दिन पहले ही इन तुच्छ बचकानी मनोवृत्तियोंसे ऊब गयी होतीं। बस।

अब, मैं जो कुछ कहना चाहती थी वह कह चुकी हूं। मैं समझती हूं यह आजके लिये पर्याप्त है, है न? तुम लोगोंने सचमुच अपना पूरा पावना पा लिया है।

स्त्री और पुरुषमें भेद क्यों?

सृष्टिके आरंभसे ही स्त्री और पुरुषमें भेद क्यों माना जाता है?

किस सृष्टिके आरंभसे? तुम किस सृष्टिकी बात कर रहे हो? पृथ्वीकी? पहली बात तो यह है कि यह भेद बिलकुल सही नहीं है। कई ऐसी उपजातियां हैं जिनमें यह भेद नहीं माना जाता। आरंभमें यह भेद था भी नहीं, यह हुई पहली बात। दूसरी, पृथ्वी-की यह सृष्टि विशुद्ध रूपमें भौतिक सृष्टि है, यह एक प्रकारसे वैश्व सृष्टिकी समाप्ति और सघनता है, किंतु वैश्व सृष्टिमें भी यह भेद आवश्यक नहीं है। सभी संभावनाएं वहां मौजूद हैं, सभी संभव

वस्तुओंका अस्तित्व रहा है और अब भी है, परंतु सृष्टिके आधारमें यह विभिन्नता नहीं है।

अतएव तुम्हारा प्रश्न निराधार है, क्योंकि वह गलत है।

किंतु भौतिक सृष्टिमें ही यह भेद क्यों है?

मैं फिरसे कहती हूं कि आरंभमें ऐसा नहीं था। एक समाजशास्त्री तुम्हें बता सकता है कि ऐसी उपजातियां हैं जिनमें ऐसा बिलकुल भी नहीं है। यह साधन तो प्रकृतिके द्वारा प्रयुक्त हुआ है—वह कई प्रयोग करती है—उसने एक आकारमें दोको गढ़ा है। उसने सभी संभव जातियोंको उत्पन्न किया है। वह इस प्रकार इसलिये करती है, क्योंकि उसे शायद यही अधिक व्यावहारिक लगा है।

किंतु और स्तरोंपर, इस पृथ्वीपर, इस जगत्के सूक्ष्म स्तरोंपर, सूक्ष्म भौतिक तथा प्राणिक और मानसिक स्तरपर भी, यदि ऐसे प्राणी हैं जिनमें इस प्रकार विभेद है, तो कई अन्य ऐसे प्राणी भी हैं जो न स्त्री हैं न पुरुष। ऐसा ही है। उदाहरणार्थ, प्राणके जगत्में लिंगका भेद बहुत कम देखनेमें आता है, वहांकी सत्ताओंमें सामान्यतया कोई लिंग-भेद नहीं होता। और मुझे यहां शंका है कि जिस देवलोकका मनुष्यने वर्णन किया है वह भी अधिकतर मानव विचारसे ही प्रभावित हो चुका है। जो भी हो, कुछ ऐसी दिव्य सत्ताएं भी हैं जिनका कोई लिंग नहीं। अतएव, यह विभेद सिवाय इसके कि यह प्रकृतिके लिये अपने लक्ष्यपर पहुंचनेका एक साधन है, और कुछ नहीं। केवल इतना ही, इससे अधिक कुछ नहीं। तुम्हें इसे इसी रूपमें लेना चाहिये। यह कोई सनातन प्रतीक हो ऐसी बात बिलकुल भी नहीं है।

ऐसे बहुत-से लोग हैं जो इस भेदसे बलपूर्वक चिपके हुए हैं। यदि इससे उन्हें कुछ संतोष मिलता है, तो वे इसके साथ रह सकते

हैं। किंतु अपने-आपमें यह कोई अंतिम, सनातन या पूर्ण वस्तु नहीं है। शायद यह अधिमानसका आदर्श था, किंतु वह भी संपूर्ण रूपमें नहीं, आंशिक रूपमें ही था। फिर भी, जो लोग इस भेद-से बहुत प्रेम करते हैं वे इसे बनाये रख सकते हैं यदि इससे उन्हें खुशी होती हो तो! इसके कुछ लाभ भी हैं और असुविधाएं भी, बल्कि असुविधाएं बहुत अधिक हैं।

तो फिर इस अवस्थाको किसने अस्त-व्यस्त किया, क्योंकि आप कहती हैं कि प्राणिक जगत्में यह भेद नहीं है?

मैं यह नहीं कहती कि वहां लिंग-भेद नहीं है बल्कि यह कहती हूं कि वहां यह एक सामान्य नियम नहीं है, पर वहां तुम्हें ऐसे प्राणी जिनमें यह भेद नहीं है उन प्राणियोंसे अधिक मिलेंगे जिनमें यह भेद है। और यह भी हो सकता है कि प्राणिक जगत्-में यह भेद अधिकतर पृथ्वीके प्रभावसे आया हो। और तब? इन प्रश्नोंका कारण? तुम किस निष्कर्षपर पहुंचना चाहते हो? मैं यही तुमसे पूछना चाहती हूं। यह तुमसे किसने कहा है कि विश्व-के आरंभसे ही ऐसा था। उन्होंने जो वस्तुस्थितिको ऐसे ही बने रहने देना चाहते हैं? मैं फिर कहती हूं, यदि इसीसे उन्हें प्रसन्नता होती है तो वे इसे ऐसा ही बने रहने दें। उन्हें कोई कुछ नहीं कहेगा। यदि इसीसे उनकी तुष्टि हो तो होने दो।

क्या शरीरका रूपांतर मन और प्राणके रूपांतरके बाद होगा या सहज-स्वाभाविक रूपमें अनायास हो जायगा?

सामान्यतया इस प्रकारका रूपांतर ऊपरसे नीचेकी ओर होता है, नीचेसे ऊपरकी ओर नहीं।

स्पष्ट ही, यदि तुम एक पक्के भौतिकवादी हो तो तुम कहोगे

कि आकारका उन्नत रूप ही नयी क्षमताओंको जन्म देता है। किंतु यह बिलकुल ठीक नहीं है। ठीक इसी ढंगसे सामान्यतः कार्य नहीं होते। मैं तुम्हें मनके रूपांतरसे पहले अपने शरीरका रूपांतर करनेकी चुनौती देती हूं। जरा प्रयत्न करके दिखाओ तो!

तुम बिना मनके हस्तक्षेपके अपनी एक उंगली भी नहीं हिला सकते, एक शब्द नहीं बोल सकते, एक पग नहीं आगे रख सकते। तब तुम किस यंत्रसे अपने शरीरका रूपांतर कर सकते हो, यदि तुम्हारा मन पहलेसे ही रूपांतरित न हुआ हो?

यदि तुम पूर्ण अज्ञानकी अवस्थामें — यदि मैं ऐसा कह सकती हूं — निवास करते हो, जिसमें तुम्हारा मन भी निवास करता है तो तुम अपने शरीरके रूपांतरकी कैसे आशा कर सकते हो?

कभी-कभी शरीर प्रतिरोध करता है। इसका क्या कारण है? मन हस्तक्षेप न भी करे तब भी यह प्रतिरोध रहता है।

सबसे अधिक प्रतिरोध कहां रहता है? तुम्हारे मस्तिष्कमें। यह कोई व्यक्तिगत उदाहरण नहीं है। जो वस्तु रूपांतरको सबसे अधिक अस्वीकार करती है, वह भौतिक मन है। वह हठीला है, क्या नहीं है? वह अपनी योग्यताकी निश्चयतामें, अज्ञानके प्रति अपने प्रेममें, सोचने और देखनेके तथा अनभिज्ञताके अपने ढंगमें हठीला है।

बस?

मां, इसका इलाज क्या है?

(लम्बा मौन)

यही इलाज है।

स्त्रियोंका कार्य

(जापानमें दिया गया भाषण)

जापानी स्त्रियोंके साथ बच्चोंके बारेमें बात करना, मेरा ख्याल है, उनके सबसे प्रिय, उनके सबसे पवित्र विषयपर बात करना होगा। निश्चय ही, दुनियांके और किसी देशमें बच्चोंको इतना अधिक महत्त्व-पूर्ण और प्रमुख स्थान नहीं मिलता। यहां ये सावधानी और मनो-योगके केंद्र होते हैं। भविष्यकी आशाएं उन्हींपर केंद्रित होती हैं और यह है भी ठीक। वे देशकी बढ़ती हुई समृद्धिकी जीती-जागती प्रतिमा हैं। अतः, जापानमें नारियोंका सबसे महत्त्वपूर्ण काम है बच्चोंका निर्माण। मातृत्व ही स्त्रियोंकी सबसे प्रधान भूमिका है। लेकिन इस बातका अर्थ तभी समझमें आ सकता है जब हम "मातृत्व" शब्दका ठीक-ठीक अर्थ समझ लें। क्योंकि खरगोशकी तरह सहज रूपमें, बिना जाने-बूझे, मशीनकी तरह बच्चे पैदा करते जाना निश्चय ही मातृत्व नहीं है। सच्चा मातृत्व सत्ताके सचेतन निर्माणसे शुरू होता है। नये शरीरमें बसनेके लिये आनेवाली आत्माके लिये आत्माको तैयार करना मातृत्व है। इस तरह नारी-का सच्चा क्षेत्र आध्यात्मिक है। लेकिन इस बातको हम प्रायः भूल जाते हैं।

केवल बच्चा पैदा करना और उसके लिये अवचेतन रूपसे शरीर तैयार कर देना काफी नहीं है। सचमुच काम तब शुरू होता है जब विचार और संकल्प-शक्तिके द्वारा एक ऐसे चरित्रकी कल्पना और निर्माण किया जाता है जो किसी आदर्शको मूर्त रूप देनेमें समर्थ हो।

यह न कहिये कि हमारे अंदर ऐसा बड़ा काम करनेकी शक्ति नहीं है। इस प्रभावशाली शक्तिके अनगिनत उदाहरण प्रमाणके रूपमें दिये जा सकते हैं।

सबसे पहले चारों ओरके भौतिक वातावरणका महत्त्व पुराने

जमानेमें भी जाना और माना जाता था। स्त्रियोंके चारों ओर कलाकी सुंदर कृतियोंको इकट्ठा करके ही धीरे-धीरे यूनानी लोगोंने अपनी जातिको इतना अधिक सामंजस्यपूर्ण बनाया था।

इस तरहके अलग-अलग व्यक्तियोंके उदाहरण तो बहुत हैं। ऐसे उदाहरण कम नहीं कि गर्भावस्थामें कोई स्त्री किसी सुंदर चित्र या मूर्तिको बहुत देखा और सराहा करती थी और जब बालक उत्पन्न हुआ तो उसकी शकल उस चित्र या मूर्तिसे बहुत मिलती-जुलती थी। स्वयं मैंने ऐसे बहुत-से उदाहरण देखे हैं। उनमेंसे दो छोटी-लड़कियोंका उदाहरण मुझे स्पष्ट रूपसे याद है। दोनों जुड़वां बहनें थीं और बहुत सुंदर थीं; लेकिन आश्चर्यकी बात यह है कि वे अपने मां-बापसे जरा भी न मिलती थीं। उनकी शकलें अंग्रेज कलाकार रेनाल्डके एक प्रसिद्ध चित्रकी याद दिलाती थीं। एक बार मैंने यह बात उनकी मांके सामने कह दी। उसने झट कहा, "हैं न उस चित्रके जैसी शकलें! आपको यह जाननेमें दिलचस्पी होगी कि यह कैसे हुआ? जब ये लड़कियां गर्भमें थीं तो मेरे बिस्तरके ऊपर रेनाल्डके उस चित्रकी एक बहुत सुंदर अनुकृति टंगी रहती थी। रातको सोनेसे पहले और सवेरे जागते ही मेरी नजर उसी चित्रपर पड़ती थी और मैं मन-ही-मन यह आशा किया करती थी कि मेरे बच्चों-के चेहरे इस चित्रके जैसे होंगे। आप देख सकती हैं कि मैं काफी सफल रही हूं।" सचमुच वह नारी अपनी सफलतापर गर्व कर सकती थी। उसका उदाहरण दूसरी स्त्रियोंके लिये बहुत उपयोगी हो सकता है।

अगर भौतिक जगत्में ही ऐसे परिणाम आ सकते हैं जहां चीजें बहुत कम नमनीय होती हैं तो फिर मनोवैज्ञानिक जगत्की तो बात ही क्या है! वहां तो विचार और संकल्प-शक्तिका असर कहीं अधिक होता है।

फिर आनुवंशिकता और 'बापपर पूत, पितापर घोड़ा' की दुहाई क्यों दी जाय? ये बातें इस चीजकी सूचक हैं कि हम

अवचेतन रूपसे अपने पुराने ढर्रेको, अपने पुराने चरित्रको ही ज्यादा पसंद करते हैं। हम एकाग्रता और संकल्प-शक्तिके द्वारा, अपनी कल्पनाके ऊंचे-से-ऊंचे आदर्शके अनुरूप जातिका निर्माण कर सकते हैं। इस प्रकारके प्रयाससे मातृत्व सचमुच बहुमूल्य और पवित्र रूप ले लेता है। निश्चय ही इस प्रकार हम आत्माके भव्य कार्यमें प्रवेश करते हैं और नारीत्व साधारण पाशविकता और उसकी सहज वृत्तियोंसे ऊपर उठकर वास्तविक मानवता और उसकी शक्तिकी ओर उठता है।

तो इस कोशिश, इस प्रयासमें ही हमारा सच्चा कर्तव्य है। और अगर यह कर्तव्य हमेशा ही बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है तो धरतीके विकासके वर्तमान मोड़पर इसका महत्त्व निश्चित रूपसे ही बहुत बढ़ गया है।

क्योंकि हम असाधारण युगमें, जगत्‌के इतिहासके एक असाधारण संधिकालमें जी रहे हैं। शायद इससे पहले संसार कभी आजके जैसे घृणा, रक्तपात और अस्तव्यस्तताके अंधेरे कालमेंसे नहीं गुजरा। साथ ही यह भी ठीक है कि इससे पहले मनुष्योंके हृदयोंमें इतनी प्रबल और इतनी उत्साहपूर्ण आशा भी कभी नहीं जागी। निःसंदेह अगर हम अपने हृदयकी आवाजको सुनें तो तुरंत पता चल जायगा कि हम न्यूनाधिक सचेतन रूपसे न्याय, सौंदर्य, सामंजस्यपूर्ण सद्‌भावना और भाईचारेके राज्यकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और यह 'बहुत बड़ा विरोधाभास मालूम होता है क्योंकि चीजें आजके संसारकी स्थितिसे एकदम उल्टी हैं। लेकिन हम सबको मालूम है प्रभातसे पहले रात्रि सबसे अधिक अंधेरी होती है। तो यह अंधेरा आती हुई ऊषाकी सूचना तो नहीं दे रहा? अभीतक रात कभी इतनी अंधेरी और भयावह नहीं हुई इसलिये शायद आनेवाला प्रभात भी बहुत अधिक ज्योतिर्मय, बहुत पवित्र और उज्ज्वल हो। रातके दुःस्वप्नोंके बाद जगत् एक नयी चेतनामें जागेगा।

जिस सभ्यताका आज ऐसे नाटकीय ढंगसे अंत हो रहा है उसका

आधार मनकी शक्तिपर था और मन ही जड़ और जीवनपर शासन करता था। हमें यहां इस विषयपर विचार नहीं करना है कि उसने जगत्‌के लिये क्या किया। हां, एक नया राज्य आ रहा है, यह आत्माका राज्य होगा। मानवके बाद ईश्वरकी बारी है।

फिर भी अगर मनुष्योंको ऐसे अद्वितीय और अद्‌भुत कालमें धरतीपर जन्म लेनेका अवसर मिला है तो क्या यह उचित है कि उनके हृदय अपने ही व्यक्तित्व या अपने ही परिवारतक सीमित रहें, उनके विचार अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और स्थानीय संबंधोंसे ही जुड़े रहें? संक्षेपमें कहें तो वही, जो यह अनुभव करते हैं कि वे स्वयं अपने या अपने परिवारके या अपने देशके भी नहीं हैं बल्कि उस भगवान्‌के हैं जो अपने-आप सभी देशोंमें मनुष्यके रूपमें प्रकट होते हैं; वही लोग जानते हैं कि उन्हें ऊपर उठना चाहिये और मानव जातिके लिये नवप्रभातके स्वागतके लिये काम करना चाहिये।

इस महान्, अनेक पहलूवाले और अंतहीन काममें स्त्रियोंकी क्या भूमिका हो सकती है? यह सच है कि जब कभी महान् घटनाओं और कार्योंकी बात उठती है तो रिवाजके अनुसार स्त्रियोंको अहसान जताते हुए तिरस्कारके साथ मुस्कराकर एक तरफ कर दिया जाता है जिसका अर्थ होता है: "यह तुम्हारा क्षेत्र नहीं है, तुम गरीब, कम-जोर, अशक्त प्राणी . . .।" और बहुत-से देशोंमें बालककी तरह, आत्म-समर्पणके साथ और शायद आलस्यके कारण भी स्त्रियोंने इस शोच-नीय स्थितिको स्वीकार कर लिया है। मैं पूरे जोरके साथ कहूंगी कि यह गलत चीज है।

भावी जीवनमें इस प्रकार भेद-भावके लिये, नर और नारीके बीच इस तरहके असंतुलनके लिये कोई जगह न होगी। नर और नारीका सच्चा संबंध बराबरीका और पारस्परिक सहायता और सहयोगभरा है। और अब, हमें अपना सच्चा स्थान लेकर अपनी वास्तविकतापर बल देना चाहिये और वह स्थान है आध्यात्मिक सुधा-रक और शिक्षकका। हां, कुछ पुरुष शायद अपने तथाकथित लाभों-

की ऐंठमें आकर स्त्रीकी ऊपरी तौरसे दीखनेवाली कमजोरीको तिरस्कारभरी दृष्टिसे देखते हैं (हालांकि यह ऊपरी तौरसे दीखनेवाली कमजोरी भी बिलकुल निश्चित नहीं है), लेकिन फिर भी किसीने ठीक ही कहा है: "चाहे जो भी हो, महामानव स्त्रीकी कोखसे ही जन्मेगा।"

यह एक महान् निर्विवाद सत्य है कि महामानव नारीसे ही जन्मेगा लेकिन इस सत्यके आधारपर ही हमें फूल न उठना चाहिये। हमें स्पष्ट रूपसे इसका अर्थ समझ लेना चाहिये और इससे आनेवाली जिम्मेदारियोंको जानकर सच्चाई और उत्साहके साथ इस बड़े कामके लिये तैयार होना चाहिये। सारे संसारमें फैले हुए काममें यही हमारा सबसे बड़ा भाग है।

इसके लिये सबसे पहले हमें कम-से-कम रूपरेखाके तौरपर यह जान लेना चाहिये कि वर्तमान अव्यवस्था और अंधकारको प्रकाश और सामंजस्यमें कैसे बदला जा सकता है। बहुत-से उपाय सुझाये गये हैं। राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक और धार्मिक उपाय भी सामने रखे गये हैं पर उनमेंसे कोई भी सफलताके साथ इस महान् कार्यको पूरा करने योग्य नहीं है। मनुष्यके अंदर नयी चेतना लानेवाली एक नयी आध्यात्मिक बाढ़ ही इस कामके रास्तेमें आनेवाली बाधाओंके पहाड़ोंको रास्तेसे हटा सकती है। इस समय जरूरत है एक नयी आध्यात्मिक ज्योतिकी, धरतीपर भगवान्की किसी ऐसी शक्तिके उतरनेकी जो अभीतक हमारे लिये अपरिचित है, भगवान्के ऐसे रूप और विचारकी, जो हमारे लिये नये हों। और यह बात करते ही हम उस बिंदुपर जा पहुंचते हैं जहांसे चले थे। मेरा मतलब है सच्चे मातृत्वसे। यह रूप जिसका निर्माण धरतीकी वर्तमान परिस्थितियोंको बदलनेकी क्षमता रखनेवाली आध्यात्मिक शक्तिको अभिव्यक्त करनेके लिये किया जायगा, उस रूपका निर्माण नारी नहीं करेगी तो कौन करेगा?

इससे स्पष्ट है कि संसारकी इस नाजुक स्थितिमें सिर्फ ऐसे

जीवको जन्म देना ही काफी नहीं है जिसमें हमारे ऊंचे-से-ऊंचे आदर्श प्रकट होते हों, हमें यह भी जाननेकी कोशिश करनी चाहिये कि प्रकृति जिस नये रूपको साकार करनेकी कोशिश कर रही है वह कैसा होगा। हमने जिन महापुरुषोंके बारेमें जाना या सुना है उन्हीं जैसे, या उनसे भी बड़े, उनसे ज्यादा प्रतिभाशाली और दक्ष मनुष्योंके निर्माणसे काम न चलेगा। हमें निरंतर प्रयास करके, हमेशा अपने विचारों और संकल्प-शक्तिके द्वारा अभीप्सा करते हुए उस ऊंची-से-ऊंची संभावनाके साथ नाता जोड़ना चाहिये जो सभी मानव मानकों और विशेषताओंसे ऊपर है और जिसमें-से महामानव जन्म लेगा।

फिरसे प्रकृतिमें वह महान् आवेग पैदा हो रहा है जो किसी एकदम नयी चीजको जन्म देना चाहता है, किसी ऐसी चीजको जिसकी हम आशा भी नहीं कर सकते। हमें इस आवेगका उत्तर देना चाहिये और उसके अनुसार चलना चाहिये।

हमें यह जाननेकी कोशिश करनी चाहिये कि प्रकृतिका यह आवेग हमें किस दिशामें ले जायगा। यह जाननेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम भूतकालके दिये हुए पाठपर नजर दौड़ायें।

हम देखते हैं कि प्रकृतिकी हर नयी प्रगतिपर, हर नयी क्षमता और नये तत्त्वके धरापर प्रकट होनेपर एक नयी जातिने जन्म लिया है। इसी भांति मानव जातिके मार्ग-दर्शकोंके प्रयाससे निरंतर प्रेरणा, नवजीवन और नवीन रूप पाते हुए जातियों, जन-समुदायों और व्यक्तियोंके जीवनके प्रगतिशील रूप मानव चक्रोंका क्रमशः अनुसरण करते हैं। इन सब रूपोंका लक्ष्य एक ही है — प्रकृतिका रहस्यमय और भव्य लक्ष्य। मनुष्योंकी भीड़में प्रकृति अतिमानव-की संभावना खोजती है, और उनमेंसे प्रत्येकमें वह भागवत प्राप्ति-को अपना उद्देश्य बनाती है।

हमें प्रकृतिकी इस मांगका उत्तर देना है, इस शानदार, इस प्रतापी कार्यमें हमें अपने-आपको लगा देना है। हमें जहांतक हो

सके इस कठिन और अभीतक अनजाने मार्गपर प्रगतिके सोपान-को अधिक-से-अधिक स्पष्ट करते चलना चाहिये।

सबसे पहले हमें मनुष्य या अतिमानवके भविष्यकी कल्पना करनेमें सावधान रहना चाहिये, हम वास्तविक मनुष्यके रूप ही को पूर्ण करके या बढ़ा-चढ़ाकर न स्वीकार लें। इस भूलसे भरसक बचनेके लिये हमें जीवन-विकासकी शिक्षाओंका अध्ययन करना चाहिये।

हम देख आये हैं कि किसी नयी जातिका प्रकट होना ही घोषणा करता है कि धरतीपर किसी नये तत्त्वका, चेतनाके नये स्तरका, एक नयी शक्ति या ऊर्जाका अवतरण हुआ है। नयी जातिमें जहां अप्रकट नयी चेतना आती है वहीं उसकी कई पुरानी विशेषताएं और पूर्णताएं खो भी सकती हैं। उदाहरणके लिये, अगर हम प्रकृतिके पिछले चरणको ही देखें तो मनुष्य और उसके पूर्ववर्ती वानरमें कौन-से बड़े भेद हैं? हम देखते हैं कि बंदरमें जीवन-शक्ति और शारीरिक क्षमता लगभग पूर्णतातक पहुंची हुई है, एक ऐसी पूर्णता जिसे विकासक्रमकी नयी जाति — मनुष्य — को छोड़ना पड़ा। मनुष्य उस तरह न तो पेड़ोंपर चढ़ सकता है, न खाइयोंपर कला-बाजियां करता हुआ एक चोटीसे दूसरी चोटीतक पहुंच सकता है। लेकिन इन चीजोंके बदले उसने बुद्धि पायी है, विवेचन-शक्ति पायी है, जोड़नेकी, निर्माणकी क्षमता पायी है। निश्चित ही मनुष्यके अंदर मन और बुद्धिका जीवन है। उसके साथ यही तत्त्व धरतीपर आये थे। मनुष्य तत्त्वतः एक मानसिक प्राणी है और यदि उसे ऐसा लगता है कि उसकी संभावनाएं यहांपर समाप्त नहीं हो जातीं, उसे अपने अंदर और जगत्में, अन्य क्षमताएं और मनसे परेकी चेतनाके स्तर दिखायी देते हैं तो ये भविष्यके लिये प्रत्याशाएं और आश्वा-सन हैं। बंदरमें भी इसी तरह मनकी संभावनाएं छिपी हुई हैं।

यह सत्य है कि कुछ मनुष्य, लेकिन बहुत ही कम, उस पारके जगत्में रह चुके हैं जिसे हम आध्यात्मिक जगत् कह सकते हैं। कुछ

लोग निःसंदेह उस जगत्के जीते-जागते अवतार भी थे। लेकिन ये सब अपवाद हैं, जातिको मार्ग दिखानेवाले अग्रदूत हैं। वे साधारण औसत मनुष्य न होकर भावी सिद्धियोंका रास्ता दिखानेवाले थे। जो बातें ऐसे इने-गिने लोगोंका विशेषाधिकार थीं और जो देश और कालमें इधर-उधर बिखरे हुए थे वे साधारण रूपमें आनेवाली नयी जातिकी सामान्य विशेषताएं बन जायंगी।

अभी मनुष्यका जीवन बुद्धिके द्वारा चलता है। मनकी क्षमताएं उसके लिये साधारण व्यवहारकी चीजें हैं। अवलोकन और अनुमान उसके ज्ञानप्राप्तिके साधन हैं। वह जीवनमें तर्कके द्वारा किसी निर्णयपर पहुंचता और अपना रास्ता चुनता है, उसे यह विश्वास तो है ही।

नयी जाति सहज ज्ञानके अनुसार चलेगी, यानी वह अपने अंदर भगवान्के विधानको सीधा देख सकेगी। कुछ मनुष्य वस्तुतः सहज-बोधसे जान सकते और अनुभव कर सकते हैं, इसी तरह जंगलके कुछ गुरिल्लें निःसंदेह ऐसे भी होते हैं जिनके अंदर बुद्धिकी झांकियां दिखायी देती हैं।

मनुष्यजातिमें बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जिन्होंने अपनी अंतरात्मामें इतनी प्रगति की है, जिन्होंने अपनी सारी शक्तियोंको ऊपरी सत्ताके आंतरिक विधानको जाननेके लिये केंद्रित किया है। उनके अंदर सहजबोधकी थोड़ी-बहुत क्षमता होती है। जब मन पूरी तरह-से शांत हो, अच्छे दमकते हुए आईनेकी तरह स्वच्छ हो और शांत दिनके सरोवरकी तरह चुपचाप और स्थिर हो तो ऊपरसे अति-मानसका प्रकाश, अंदरके सत्यका प्रकाश मनमें चमकता है और सहजबोधको जन्म देता है। जिन्हें नीरवतामें इस आवाजको सुननेका अभ्यास है वे इसीको अपने कामोंकी प्रेरणा बनानेका अधिक-से-अधिक प्रयास करते हैं और जहां साधारण आदमी बुद्धि और विवेचनके पेचीदा रास्तोंपर भटकता रहता है वहां ये लोग जीवनके घुमावदार रास्तोंसे होते हुए सहजबोधके मार्गदर्शनमें सीधे चले जाते

हैं। यह सहजबोध एक ऊंचे प्रकारकी नैसर्गिक वृत्ति है और एक मजबूत और अचूक मार्गदर्शक है।

यह क्षमता आजकल बहुत ही विरल और अपवाद रूप या अस्वाभाविक है परंतु नयी जातिके लिये, कलके मनुष्यके लिये बिलकुल सामान्य और स्वाभाविक होगी लेकिन शायद उसका निरंतर उपयोग मनुष्यकी बुद्धिकी क्षमताओंके लिये हानिकर हो। जैसे आजके मनुष्यमें बंदरकी चरम शारीरिक क्षमताएं नहीं हैं उसी तरह शायद अतिमानवमें मनुष्यकी चरम बौद्धिक क्षमताएं नहीं होंगी, उसमें अपनेआपको और औरोंको धोखा देनेकी क्षमता न रहेगी।

जब मनुष्य बेधड़क होकर यह घोषणा कर सकेगा कि उसने अभीतक जो कुछ प्राप्त किया है — इसमें उसकी बुद्धिकी भी गिनती हो जाती है जिसके बारेमें उसे उचित परंतु साथ ही व्यर्थ गर्व है — — वह अब काफी नहीं है और उस महान् शक्तिको खोलना, खोजना, अपने अंदर उसे मुक्त करना ही अबसे उसका सबसे बड़ा और मुख्य काम होगा, तब उसके लिये अतिमानवताका रास्ता खुल जायगा। तब मनुष्यका दर्शन, विज्ञान, नीतिशास्त्र, सामाजिक जीवन, कला-कौशल आदि उसके महत्त्वपूर्ण कार्य-कलाप उसके गोलाकारमें चक्कर लगानेवाली मन और प्राणकी व्यायाम न रहकर मन और प्राणके पीछे छिपे सत्यकी खोज बन जायेंगे — और मानव जीवनमें शक्ति उतारनेके साधन होंगे। और यह हमारी वास्तविक सत्ता और प्रकृतिकी खोज है। फिर भी, वह व्यक्तित्व जो हम अभीतक तो नहीं हैं पर भविष्यमें होंगे, वह बलवान् प्राण नहीं होगा जिसके गीत नीत्शेने गाये हैं। वह एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति और आध्यात्मिक व्यक्तित्व होगा।

अतिमानवकी बात करते हुए यह सावधानी जरूरी है कि इसे नीत्शेकी बिलकुल ऊपरी और अपूर्ण किंतु मजबूत कल्पनाके साथ न मिला दिया जाय। जबसे नीत्शेने अतिमानव शब्दका आविष्कार किया है तबसे जो भी आनेवाली जातिके बारेमें इस शब्दका प्रयोग

करता है वह जाने-अजाने नीत्शेकी कल्पनाको जगा देता है। निश्चय ही नीत्शेका यह विचार बिलकुल ठीक है कि वर्तमान असंतोषजनक मानवतामेंसे अतिमानवको विकसित करना ही हमारा कर्तव्य है। उसका यह सूत्र कि हमें 'अपना सच्चा व्यक्तित्व बनना चाहिये' ऐसा है जिसमें कुछ भी जोड़ने-घटानेकी जरूरत नहीं क्योंकि इसका भाव यही है कि मनुष्यने अभीतक अपनी सच्ची अंतरात्मा-को, अपनी सच्ची प्रकृतिको नहीं पाया है जिससे वह सफलतापूर्वक सहज जीवन जी सके। फिर भी नीत्शेने एक बड़ी भूल की जिससे हमें बचना चाहिये। उसका अतिमानव मनुष्यका ही बढ़ा-चढ़ा रूप है जिसमें पूरी तरह शक्ति और बलका ही राज है। मनुष्यकी और सब विशेषताएं इसके नीचे दब गयी हैं। यह हमारा आदर्श नहीं हो सकता। हम भली-भांति देख सकते हैं कि केवल बलकी पूजा हमें कहां ले जाती है। उसका परिणाम बलवानोंके अपराध और जगत्का नाश — बस यही होगा।

*

नहीं, अतिमानवका मार्ग हमेशा पूर्ण रहनेवाली आत्माके खिलनेमें है। एक बार अगर व्यक्ति आध्यात्मिक बननेके लिये राजी हो जाय तो सब कुछ आसान हो जायगा, सब कुछ बदल जायगा। आध्या-त्मिक जीवनकी उच्चतर पूर्णता, आध्यात्मिक मनुष्यके सहज रूपसे अपनी उपलब्ध सत्ताके सत्यकी आज्ञाका पालन करनेसे आयेगी लेकिन तब जब वह अपना सच्चा स्व बन जायगा, अपनी सच्ची प्रकृतिको पा लेगा। यह सहज प्रकृति पशुओंमें अवचेतन सहज बुद्धिके रूपमें न होकर समग्र चेतनाके साथ अन्तर्भासिक होगी।

इसलिये जो लोग नव युगमें मानवताके भावीकी सबसे अधिक सहायता करेंगे वे वही होंगे जो आध्यात्मिक विकासको ही नियति और मानवजातिकी सबसे बड़ी आवश्यकताके रूपमें स्वीकार करेंगे

—एक ऐसे विकास या परिवर्तनको जो वर्तमान मानवजातिको अध्यात्म मानवतामें उसी तरह बदल देगा जैसे एक बड़ी हदतक पाशविक मनुष्य उच्च स्तरकी मानसिक मानव जातिमें बदला है।

वे अमुक विश्वासों या धर्मके रूपोंकी ओरसे अपेक्षया उदासीन होंगे और मनुष्योंको उन विश्वासों और रूपोंको अपनाने देंगे जिनकी ओर वे स्वभावतः आकर्षित हों। वे इस आध्यात्मिक परिवर्तनमें श्रद्धाको ही आवश्यक मानेंगे। विशेषकर, वे यह सोचनेकी भूल नहीं करेंगे कि यह परिवर्तन यंत्रों या बाहरी प्रथाओंके द्वारा लाये जा सकेंगे। वे यह बात जानते होंगे और इसे कभी न भूलेंगे कि ये परिवर्तन तबतक वास्तविक नहीं बन सकते जबतक कि हर एक इन्हें अपने आन्तरिक जीवनमें साधित न कर ले।

इन व्यक्तियोंमें नारियोंको ही सबसे पहले यह महान् परिवर्तन साधना होगा क्योंकि उनका विशेष कार्य है इस संसारमें नयी जाति-के पहले नमूनेको जन्म देना। और यह कर सकनेके लिये नारीको न्यूनाधिक रूपसे अपने विचारोंमें कल्पना करनी होगी कि इस आध्या-त्मिक परिवर्तनका क्या परिणाम होगा। क्योंकि अगर यह केवल बाह्य रूपान्तरसे सिद्ध नहीं होता तो हमें यह जान लेना चाहिये कि अतिमानवको इस रूपान्तरके बिना नहीं बुलाया जा सकता।

हां, नयी जाति कैसी होगी इसका चित्र खींचनेसे अधिक कठिन और कोई काम नहीं है। यह एक ऐसा प्रयास है जिसे साधित करना असंभव है, और निश्चय ही हम इसके ब्योरेमें जानेकी कोशिश न करेंगे। हम अपने मनसे अतिमानस या आत्माकी इस सृष्टिको पूरी तरह या यथार्थ रूपमें पकड़नेके लिये नहीं कह सकते।

लेकिन हम पहले देख आये हैं कि भावी सत्ताकी एक विशेषता यह होगी कि मानसिक तर्क-बुद्धिका स्थान अन्तर्भासात्मक ज्ञान ले लेगा। इसी तरह नैतिक और सामाजिक दृष्टिसे नयी जातिके जीवन-का स्तर या मानक क्या होगा?

क्योंकि धार्मिक विश्वास और मत गौण हो जाएंगे इसीलिये

नैतिक विधि-निषेध, आचरणके नियम या रूढ़ियोंका कोई मूल्य न रहेगा।

वास्तवमें, मानव जीवनमें सारी नैतिक समस्या प्राणिक इच्छाओं और आवेगों तथा मानसिक शक्तिके आदेशोंके संघर्षपर केन्द्रित है। जब प्राणिक इच्छा-शक्ति मानसिक शक्तिके आधीन हो तो व्यक्ति या समाजका जीवन नैतिक हो जाता है। लेकिन जब प्राणिक इच्छा और मानसिक शक्ति दोनों, समान रूपसे एक अधिक ऊंची चीज, अति-मानसके आधीन हों, केवल तभी मानव-जीवनको पार किया जा सकता है और सच्चे आध्यात्मिक जीवनका, अतिमानवके जीवनका आरंभ होता है। उसका विधान अन्दरसे आयेगा, वह दिव्य विधान होगा जो हर सत्ताके केन्द्रमें चमकता, वहींसे जीवनपर शासन करेगा। यह दिव्य विधान अपनी अभिव्यक्तिमें तो बहुविध होता है पर अपने मूलमें एक ही रहता है और इस एकताके कारण ही वह चरम व्यवस्था और सामंजस्यका विधान है। इस भांति व्यक्ति, जो अहंकारभरे हेतुओं, विधि-विधानों, रीति-रिवाजोंसे प्रेरित न होगा, सभी अहंकारभरे लक्ष्योंको त्याग देगा। पूर्ण अनासक्ति ही उसका नियम होगा। इहलोकमें या परलोकमें व्यक्तिगत लाभ पानेके लिये काम करना उसके लिये कल्पनातीत और असंभव होगा। उसका हर एक कर्म प्रेरणा देनेवाले दिव्य विधानकी आज्ञानुसार पूर्ण, सरल और आनन्दमय आज्ञापालन होगा जिसमें परिणामों या पुरस्कारोंकी मांग न होगी क्योंकि उस प्रेरणाके अनुसार काम करना, स्वयं अन्तर-स्थित भागवत तत्त्वके साथ चेतना और संकल्पमें ऐक्य प्राप्त करनेका आनन्द ही अपने-आपमें परम पुरस्कार होगा।

और इस तादात्म्यमें ही अतिमानव अपना सामाजिक स्तर पाएगा। क्योंकि वह अपने अन्दर दिव्य विधानको पाकर, उसी दिव्य विधानको हर एक सत्ताके अन्दर देख सकेगा और अपने अन्दर उसके साथ तादात्म्य पाकर औरोंके अन्दर भी उसके साथ तादात्म्यका अनुभव करेगा और इस प्रकार केवल तत्त्व या सार रूपमें ही

नहीं, जीवनके अत्यन्त बाहरी स्तरों और रूपोंमें भी सबकी एकताका भान प्राप्त कर लेगा। वह कोई मन, प्राण या शरीर न होकर उन्हें अनुप्राणित करने और सहारा देनेवाली नीरव, शान्त और शाश्वत आत्मा होगा जो इन सबपर शासन करती है और वह देखेगा कि यही आत्मा हर जगह, सभी मन, प्राण, शरीरोंको अनुप्राणित करती और सहारा देती है। वह इस आत्माको भागवत स्रष्टा और सभी कर्मोंके कर्ताके रूपमें जानेगा जो सभी सत्तामें मौजूद है क्योंकि वैश्व अभिव्यक्तिकी अनेक आत्माएं एक ही भगवान्‌के अनेक चेहरे हैं। वह हर एक सत्ताको इस रूपमें देखेगा मानों वही वैश्व भागवत सत्ता उसके आगे विभिन्न रूपोंमें आ रही है। वह अपने-आपको उस एक सत्तामें मिला देगा और स्वयं अपने मन, प्राण और शरीरको उसी आत्माके पहलुओंके रूपमें लेगा और आज वे सब जिन्हें हम अपनेसे अलग मानते हैं, वे उसकी चेतनाके लिये विभिन्न मन, प्राण और शरीरोंमें उसके स्वके ही रूप होंगे। वह सबके शरीरोंमें अपने शरीरको एक अनुभव कर सकेगा, सारे पदार्थकी एकताका भान रखते हुए वह सभी सत्ताओंके मन और प्राणके साथ अपने-आपको एक कर लेगा। संक्षेपमें कहें तो वह औरोंमें अपने-आपको और अपने अन्दर औरोंको देखेगा और अनुभव करेगा। इस प्रकार ऐक्यकी पूर्णतामें सच्ची एकात्मताकी उपलब्धि करेगा।

हमें अतिमानवके वर्णनमें अपने-आपको इन्हीं अनिवार्य संकेतोंतक सीमित रखना चाहिये। उसका रेखांकन करनेके प्रयासमें और आगे बढ़नेकी जरूरत नहीं क्योंकि हमें विश्वास है कि और ज्यादा यथार्थ केवल निःसार ही नहीं, व्यर्थ भी होगा। न्यूनाधिक रूपमें यथार्थ, बहुत-सी कल्पनाएं नयी जातिके निर्माणमें सहायता न देंगी। अगर हम अपने मन और हृदयमें गतिशीलताको दृढ़ रूपसे पकड़े रहें; ऐसी प्रेरणाको — जो सच्ची और तीव्र अभीप्सासे आती है — बनाये रखें; अपने अन्दर भविष्यमें धरतीपर अभिव्यक्त होनेवाली नयी जातिकी परम धारणाकी प्रकाशयुक्त ग्रहणशीलताको बनाये रखें,

तभी हम भविष्यकी सन्तानके निर्माणमें एक निर्णायक कदम उठा सकेंगी और अपने-आपको संसारका त्राण करनेवालोंके निर्माणका उपयुक्त माध्यम बना सकेंगी।

क्योंकि वास्तवमें यह नयी जाति त्राण करनेवालोंकी होगी। क्योंकि इस जातिका प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने लिये, शासन या समाजके लिये, व्यक्तिगत अहं या सामुदायिक अहंके लिये नहीं बल्कि इनसे बहुत बड़ी चीजके लिये, स्वयं अपने अन्दर भगवान् और संसार-के अन्दर भगवान्के लिये जियेगा।

नारी और युद्ध

फूजोशिमबुन, ७ जुलाई, १९१६ में प्रकाशित

आपने पूछा है कि मैं नारी आंदोलनके बारेमें क्या सोचती हूं और उसपर वर्तमान युद्धका क्या प्रभाव होगा।

युद्धका सबसे पहला प्रभाव निश्चय ही यह हुआ है कि उसने इस प्रश्नको एक नया ही पहलू दे दिया। स्त्री-पुरुषके सतत विरोध-की निरर्थकता एकदम स्पष्ट रूपसे प्रकट हो गयी और नर-नारीके संघर्षके पीछे, केवल बाहरी तथ्योंके साथ संबंध रखते हुए, परिस्थि-तियोंकी गंभीरताने सतत विद्यमान, यद्यपि हमेशा तथ्यके रूपमें प्रकट नहीं, वास्तविक सहयोग, मानवजातिके इन परस्पर पूरक अंगोंके सच्चे सहयोगकी खोजको संभव बनाया।

बहुत-से पुरुषोंको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि स्त्रियां कितनी आसानीसे उनके अधिकतर पदोंपर उनका स्थान ले सकती हैं। उनके आश्चर्यके साथ कुछ खेद भी मिला था कि वे अपने काम और संघर्षमें साथ देनेवालीको पहले न पहचान पाये, उसे वे अधिकतर केवल भोग और मन-बहलावकी चीज या बहुत हुआ तो उनके घर-द्वार और बच्चोंकी देख-भाल करनेवाली ही मानते रहे। निश्चय ही

स्त्री यह सब भी है और यह होनेके लिये उसमें बहुत विशेष, अपवादिक गुण चाहिये लेकिन वह केवल यही नहीं है — आजकी परिस्थितियोंने यह बात स्पष्ट रूपसे प्रमाणित कर दी है।

कठिन-से-कठिन भौतिक परिस्थितियोंमें, वास्तवमें दुश्मनकी गोलियोंकी बौछारके बीच, घायलोंकी सेवा करनेके लिये जाकर अबला कहानेवालीने यह प्रमाणित कर दिया है कि उसकी ऊर्जा और सहनशक्ति पुरुषके बराबर हैं। लेकिन जहां नारियोंने सबसे बढ़कर विशिष्ट प्रतिभा दिखायी है वह है संगठन करनेकी क्षमतामें। मुसलमानोंके आक्रमणसे पहले ब्राह्मण भारतने बहुत पहले स्त्रियोंकी शासन क्षमताको मान्यता दी थी। एक प्रचलित कहावतके अनुसार: "जिस संपत्तिका शासन नारीके हाथमें होता है वह समृद्ध रहती है।" परंतु पश्चिममें, रोमन कानूनके साथ मिलकर सेमेटिक विचारने रीति-रिवाजोंपर इतना गहरा प्रभाव डाला है कि नारीको अपनी संगठन-शक्ति दिखानेका अवसर ही न मिला।

यह सच है कि फ्रांसमें बहुत बार यह दिखायी देता है कि नारी ही घरकी सारी व्यवस्थाकी, आर्थिक व्यवस्थाकी भी स्वामिनी होती है। मध्यम वर्गकी खुशहाली इस व्यवस्थाके अच्छे पक्षको सिद्ध करती है। फिर भी यह विरल ही रहा है कि बहुत महत्त्वपूर्ण कारोबार आदिकी व्यवस्थामें नारीकी क्षमताका सीधा उपयोग हुआ हो और अभीतक सार्वजनिक प्रशासनके विश्वस्त या गोपनीय पद स्त्रियोंके लिये हमेशा बंद ही रहे थे। इस युद्धने यह सिद्ध कर दिया है कि नारीके सहयोगको अस्वीकार करके सरकारोंने अपने-आपको अमूल्य सहायतासे वंचित रखा है। उदाहरणके लिये मैं एक घटना सुनाती हूं।

युद्ध शुरू होनेके कुछ महीने बाद, जब जर्मनीने लगभग सारे बेलजियमपर अधिकार कर लिया था, अधिकृत प्रदेशोंके वासी बहुत ही बुरी हालतमें थे। सौभाग्यवश धनाढ्य अमरीकन स्त्री-पुरुषोंके नेतृत्वमें इन अत्यधिक पीड़ित लोगोंकी अनिवार्य आवश्यकताओंको पूरा करनेके

लिये एक संस्थाका सूत्रपात हुआ। कुछ सामरिक कार्रवाइयोंके कारण बहुत-से छोटे-छोटे गांवोंके समूह अचानक खाद्य पदार्थोंसे वंचित कर दिये गये। अकाल सिरपर था। अमरीकन संस्थाने इसी प्रकारकी अंग्रेजी संस्थाओंको यह संदेश भेजा कि तुरंत, एकदम अनिवार्य वस्तुओंकी पांच लारियां भेज दें। इन लारियोंको अपने लक्ष्यतक तीन दिनमें पहुंच जाना चाहिये। जिन पुरुषोंके सामने यह निवेदन रखा गया उन्होंने उत्तर दिया कि इसके अनुसार करना बिलकुल असंभव है। सौभाग्यवश एक स्त्रीने यह बात सुन ली। उसे यह बात बहुत ही भयावह लगी कि ऐसी दुःखद परिस्थितियोंमें कोई असंभव शब्दका उपयोग कर सकता है, वह स्त्रियोंके एक दल-की सदस्य थी। वह दल घायलों और युद्ध-पीड़ितोंकी सहायता करता था। उन्होंने तुरंत अमरीकन संस्थाको वचन दे दिया कि वे उनकी मांगको पूरा कर देंगी और तीन ही दिनोंमें बहुत-सी बाधाओंको पार कर लिया गया। उनमें कुछ, विशेषकर यातायात-संबंधी कठिनाइयां सचमुच अलंघ्य मालूम होती थीं। संगठन-शक्ति-वाले समर्थ मन और तीव्र संकल्पने चमत्कार कर दिखाया और चीजें तीन दिनमें ठिकाने जा पहुंचीं और भयंकर अकाल टल गया।

हमारा यह मतलब नहीं है कि वर्तमान युद्धने स्त्रीके केवल विशेष गुणोंको ही प्रकट किया है। उसकी दुर्बलताओं, उसके दोषों, उसकी तुच्छताओंको भी सामने आनेका अवसर मिला है। और अगर स्त्रियां देशों और जातियोंके प्रशासनमें वह स्थान पाना चाहती हैं जिसपर उनका दावा है तो उन्हें आत्म-संयम, विचारों और दृष्टि-कोणके विस्तार, बौद्धिक नमनीयता और अपनी भावुकतापूर्ण पसंदों-की विस्मृतिमें बहुत ज्यादा आगेतक बढ़ना होगा ताकि वे सार्व-जनिक कार्योंकी व्यवस्था कर सकें।

यह निश्चित है कि शुद्ध रूपसे पुरुषोंकी राजनीति अपनी अक्ष-मताका प्रमाण दे चुकी है। वे बहुत बार एकदम व्यक्तिगत और अपनी मनमानी तीव्र क्रियाओंकी खोजमें डूब चुके हैं। निःसंदेह

स्त्रियोंकी राजनीति निःस्वार्थताकी प्रवृत्ति और अधिक मानव समाधान लायेगी। परंतु दुर्भाग्यवश अपनी वर्तमान अवस्थामें साधारणतः स्त्रियां आवेगों और उत्साहपूर्ण पक्षपातकी कठपुतलियां हैं। उनमें उस तर्कसंगत स्थिरताका अभाव है जो बौद्धिक क्रियासे ही आती है। बौद्धिक क्रियाएं खतरनाक अवश्य हैं क्योंकि वे कठोर, शीत और निष्करुण होती हैं, फिर भी वे निश्चित रूपसे उस भावुकताके उफानको वशमें रखनेके लिये उपयोगी हैं जिसे सामूहिक हितोंके शासनमें प्रधान स्थान नहीं दिया जा सकता।

अगर स्त्रियोंकी क्रियावली पुरुषोंके कामोंका स्थान लेना चाहे तो ये दोष बहुत गंभीर रूप ले सकते हैं। परंतु इसके विपरीत, यदि नर-नारीमें सहयोग हो तो ये पुरुषोंके दोषोंकी एक हदतक क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। और यही धीरे-धीरे दोनोंको पारस्परिक पूर्णताकी ओर ले जानेका सबसे अच्छा उपाय होगा। नारीका कार्य पूरी तरह अंदर, घरेलू कामोंतक सीमित रखना और पुरुषको पूरी तरह बाहरके और सामाजिक कार्योंमें लगाये रखना और इस प्रकार जिन्हें इकट्ठा होना चाहिये उन्हें अलग करना तो वर्तमान दुःखद स्थितिको हमेशाके लिये स्थायी कर देना होगा, जिससे दोनोंको समान रूपसे कष्ट हो रहा है। ऊंचे-से-ऊंचे कर्तव्यों और भारी-से-भारी जिम्मेदारियोंके आगे उनके अपने-अपने पृथक् गुणोंको एक विश्वासपूर्ण एकतामें मिल जाना चाहिये।

क्या वह समय नहीं आ गया है जब नर और नारी जातियोंको एक-दूसरेके सामने परस्पर विरोधियोंके रूपमें संघर्षकी मनोवृत्ति रखना बंद कर देना चाहिये? राष्ट्रोंको कठोर और पीड़ाजनक पाठ पढ़ाया जा रहा है। इस समय खंडहरोंके जो ढेर लग रहे हैं उनपर नयी, ज्यादा सुंदर, ज्यादा सामंजस्यपूर्ण इमारतें खड़ी की जा सकती हैं। अब यह दुर्बल प्रतियोगिताओं और स्वार्थपूर्ण अधिकारोंकी मांगका समय नहीं रहा। सभी मनुष्योंको, स्त्री-पुरुषोंको उस उच्चतम आदर्शके बारेमें सचेतन होनेके समान प्रयासमें सहयोग देना

चाहिये जो चरितार्थ होना चाहता है और सबको उसे उपलब्ध करने-के लिये बड़े उत्साहसे काम करना चाहिये। तो अब जिस प्रश्नको हल करना है, सच्चा प्रश्न केवल उनके बाहरी क्रिया-कलापके अधिक अच्छे उपयोगका नहीं है बल्कि सबसे बढ़कर आंतरिक विकासका प्रश्न है। आंतरिक विकासके बिना बाहरी प्रगति संभव नहीं है।

इस तरह, संसारभरकी सभी समस्याओंकी तरह नारीवादका प्रश्न भी एक आध्यात्मिक समस्या बनकर लौट आता है क्योंकि आध्यात्मिक सत्य अन्य सबका आधार है। भागवत जगत्, बौद्ध धर्मका धम्मता वह शाश्वत आधार है जिसपर और सब जगतों-की रचना हुई है। इस परम सद्वस्तुके संबंधमें सभी पुरुष-स्त्रियां, सभी समान हैं, सभी अधिकारों और कर्तव्योंकी दृष्टिसे समान हैं। इस क्षेत्रमें जो भेद रह सकता है वह सच्चाई और अभीप्साकी तीव्रता और संकल्पकी निरंतरतापर आधारित होता है और नर-नारी संबंध-की समस्याका एकमात्र गंभीर और चिरस्थायी समाधान इस मौलिक आध्यात्मिक एकताको जानने और स्वीकारनेमें है। समस्याको इस प्रकाशमें रखना चाहिये, हमारी क्रियाओं और नव 'जीवनका केंद्र इस ऊंचाईपर खोजा जाना चाहिये, दिव्य मानवताका भावी मंदिर इसीके चारों ओर बनेगा।

स्त्री और पुरुष

सबसे पहले हम यह मानकर चलें कि अभिमान और निर्लज्जता हमेशा हास्यास्पद चीजें होती हैं। सिर्फ मूर्ख और अज्ञानी लोग ही अक्खड़ और घमंडी होते हैं। जैसे ही मनुष्य इतना प्रबुद्ध हो जाय कि वह, चाहे कितना भी कम क्यों न हो, विश्वके सर्वव्यापक रहस्यके साथ नाता जोड़ सके, वह निश्चित रूपसे नम्र हो जाता है।

स्त्री अपनी वश्यताके कारण ही पुरुषकी अपेक्षा ज्यादा सरलताके साथ सृष्टिमें कार्यरत परम शक्तिका सहज बोध प्राप्त कर सकनेके कारण प्रायः अधिक नम्र होती है।

लेकिन इस नम्रताके तथ्यको आवश्यकतापर आधारित करना गलत है। पुरुषको स्त्रीकी जितनी आवश्यकता होती है, स्त्रीको पुरुषकी उससे ज्यादा आवश्यकता नहीं होती। बल्कि ज्यादा ठीक यह है कि स्त्री और पुरुष दोनोंको समान रूपसे एक-दूसरेकी आवश्कता होती है।

शुद्ध भौतिक क्षेत्रमें भी जितनी स्त्रियां भौतिक रूपसे पुरुषोंपर निर्भर हैं उतने ही पुरुष स्त्रीपर निर्भर होते हैं। अगर नम्रता इस निर्भरताका परिणाम होती तो जहां पुरुष नारीपर निर्भर हैं वहां पुरुषोंको नम्र और स्त्रियोंको अधिकार-शील होना चाहिये।

और फिर, यह कहना कि स्त्रियोंको नम्र होना चाहिये क्योंकि इससे पुरुष खुश होते हैं—गलत है। इससे तो यही समझा जायगा कि स्त्रीको धरतीपर इसीलिये बनाया गया है ताकि वह पुरुषोंको खुश करे—और यह वाहियात है।

सारा विश्व भागवत शक्तिको प्रकट करनेके लिये रचा गया है। और मनुष्योंका, स्त्रियों या पुरुषोंका, यह विशेष प्रयोजन है कि वे उस अनंत भागवत तत्त्वके बारेमें सचेतन हों और उसे अभिव्यक्त करें। उनका लक्ष्य यही है, कोई दूसरा नहीं। अगर वे, स्त्री

और पुरुष, इस बातको जानें और अधिक बार याद कर सकें तो वे प्राथमिकता या अधिकारके तुच्छ झगड़ोंके बारेमें सोचना बंद कर देंगे और सेवा करनेकी अपेक्षा सेवा करवानेमें अधिक प्रतिष्ठा न देखेंगे, क्योंकि तब सब अपने-आपको समग्र रूपसे भगवान्‌का सेवक मानेंगे और हमेशा पहलेसे ज्यादा और पहलेसे अच्छी तरह सेवा करनेमें ही अपनी प्रतिष्ठा मानेंगे।

स्त्रियोंकी चेतना

स्त्रियां प्राणिक और भौतिक चेतनाके साथ पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक बंधी नहीं होतीं; बल्कि अपने अंत:पुरुषको ढूंढकर उसीके अनुसार चलना उनके लिये अधिक सुगम होता है, क्योंकि साधारणतः पुरुषोंके गर्वपूर्ण मानसिक दावोंका उनमें अभाव होता है...।

उनकी सचेतनता मानसिक ढंगकी नहीं होती जिसका शब्दोंमें वर्णन हो सके पर वे अपने भावोंमें सचेतन होती हैं और उनमेंसे श्रेष्ठ कोटिकी स्त्रियां अपने कार्योंमें सज्ञान होती हैं।

नारी-शरीर और व्यायाम

शारीरिक शिक्षणके उद्देश्यसे अपने दलके बच्चोंके साथ व्यवहार करते समय बालिकाओंके विषयमें कुछ समस्याएं हमारे सामने आ खड़ी होती हैं। उनमेंसे अधिकांश ऐसे सुझाव हैं जो उन्हें अपने मित्रोंसे, बड़ी लड़कियोंसे, माता-पिता या अभिभावकों और डाक्टरोंसे मिलते हैं। कृपा कर नीचे लिखे प्रश्नोंपर कुछ प्रकाश डालिये जिससे कि अपने उत्तरदायित्वोंको अधिक योग्यताके साथ पूरा करनेके लिये हमें अधिक ज्ञान प्राप्त हो।

प्रश्न

१. अपने मासिक कालके विषयमें किसी बालिकाका मनोभाव क्या होना चाहिये ?

२. क्या किसी बालिकाको अपने मासिक कालमें अपने शारीरिक शिक्षणके सामान्य कार्यक्रममें भाग लेना चाहिये ?

३. कुछ लड़कियां अपने मासिक कालमें क्यों पूर्णतः दुर्बल हो जाती हैं तथा अपनी पीठके निचले भागमें और पेटमें दर्दका अनुभव करती हैं, जब कि औरोंको कोई असुविधा नहीं होती या बहुत मामूली-सी असुविधा होती है ?

४. कोई लड़की अपने मासिक कालके दुःख-दर्दको कैसे जीत सकती है ?

५. क्या आपका मत यह है कि बालकों और बालिकाओंके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके व्यायाम होने चाहियें ? क्या तथाकथित पुरुषोचित खेल-कूदोंका अभ्यास करनेसे किसी बालिकाके जननेन्द्रिय आदि अंगोंको हानि पहुंच सकती है ?

६. क्या कठिन व्यायामोंका अभ्यास करनेसे किसी लड़कीकी

आकृति बदल जायगी और वह एक पुरुषकी आकृतिकी तरह मांसल हो जायगी और इस कारण वह लड़की कुरूप दिखायी देने लगेगी ?

७. यदि कोई लड़की विवाह करना चाहे और पीछे उसे बच्चा हो तो क्या कठिन व्यायामोंके करनेके कारण उसे बच्चा होते समय अधिक कठिनाइयां होंगी ?

८. नारीत्वकी दृष्टिसे बालिकाओंके लिये शारीरिक शिक्षणका क्या आदर्श होना चाहिये ?

९. हमारी नवीन जीवन-पद्धतिके अंदर पुरुष और स्त्रीका क्या मुख्य कार्य होना चाहिये ? उनमें परस्पर क्या संबंध होगा ?

१०. नारीके शारीरिक सौंदर्यका क्या आदर्श होना चाहिये ?

उत्तर :

तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देनेसे पहले मैं तुमसे कुछ बातें कहना चाहती हूं। निस्संदेह तुम उन्हें जानते हो, पर तुम यदि यह जानना चाहते हो कि श्रेष्ठ जीवन कैसे यापन किया जाय तो तुम्हें उन्हें कभी भूलना नहीं चाहिये।

यह सच है कि हम, अपने आंतरिक स्वरूपमें, एक आत्मा हैं, सजीव अंतरात्मा हैं जो अपने अंदर भगवान्‌को वहन करती है, और भगवान् बननेकी, उन्हें पूर्ण रूपसे अभिव्यक्त करनेकी अभीप्सा करती है; वैसे ही यह भी सच है कि, कम-से-कम इस क्षण, अपनी अत्यंत स्थूल बाह्य सत्तामें, अपने शरीरमें, हम अब भी एक पशु, एक स्तन-पायी जीव हैं, निस्संदेह एक उच्चतर जातिके हैं, पर पशुओं जैसे ही निर्मित हैं और पशु-प्रकृतिके नियमोंके ही अधीन हैं।

तुम लोगोंको निश्चय ही यह पढ़ाया गया होगा कि स्तनपायी जीवोंकी एक विशेषता यह है कि उनकी मादा गर्भ धारण करती है और अपने गर्भस्थ बच्चेको तबतक वहन करती है और निर्मित

करती है जबतक वह क्षण नहीं आ जाता जब बच्चा पूर्ण आकार प्राप्त करके अपनी माताके शरीरसे बाहर निकल सके और स्वतंत्र रूपसे जीवन यापन करने लगे।

इस कार्यको दृष्टिमें रखकर प्रकृति माताने स्त्रियोंको खूनकी कुछ अतिरिक्त मात्रा प्रदान की है जो बालकके निर्माणके लिये व्यवहृत होती है। परंतु इस अतिरिक्त रक्तका उपयोग करना सर्वदा आवश्यक नहीं होता और इसलिये जब कोई बच्चा पैदा होनेवाला नहीं होता तब रक्तकी अधिकता और जमावसे बचनेके लिये अतिरिक्त रक्तको निकाल फेंकनेकी आवश्यकता होती है। बस, यही है मासिक धर्मका कारण। यह एक सीधी-सी स्वाभाविक क्रिया है, जिस पद्धतिसे नारीका निर्माण हुआ है उसीका एक परिणाम है और शरीरकी अन्य क्रियाओंकी अपेक्षा इसे अधिक महत्त्व देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह कोई रोग नहीं है और किसी दुर्बलता या सच्ची असुविधाका कारण नहीं बन सकती। अतएव, एक स्वाभाविक स्थितिमें रहनेवाली स्त्रीको, ऐसी स्त्रीको जो अनावश्यक ढंगसे नर्म तबियतकी न हो उसे, केवल स्वच्छतासंबंधी आवश्यक सावधानी बरतनी चाहिये, इसके विषयमें कभी जरा भी सोचना नहीं चाहिये और अपने कार्यक्रममें कोई भी परिवर्तन न कर नित्यकी तरह अपना दैनिक जीवन बिताना चाहिये। यही अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखनेका सबसे उत्तम उपाय है।

इसके अतिरिक्त, यह स्वीकार करनेपर भी कि जहांतक हमारे शरीरका प्रश्न है हम अब भी भयंकर रूपसे पशुत्वसे संबंध रखते हैं, हमें यह सिद्धांत नहीं बना लेना चाहिये कि यह पशु-अंश, जिस तरह हमारे लिये अत्यंत ठोस और अत्यंत सत्य है उसी तरह वह एकमात्र वस्तु है जिसकी अधीनता स्वीकार करनेके लिये हम बाध्य हैं और जिसे हमें अपने ऊपर शासन करने देना चाहिये। दुर्भाग्यवश जीवनमें अधिकतर यही होता है और निःसंदेह मनुष्य अपनी भौतिक सत्ताके प्रभुकी अपेक्षा कहीं अधिक गुलाम हैं। परंतु, इसके

विपरीत ही होना चाहिये क्योंकि व्यक्तिगत जीवनका सत्य एकदम दूसरी चीज है।

हमारे अंदर एक विवेकपूर्ण संकल्पशक्ति है जिसे कम या अधिक बोध प्राप्त है और जो हमारे चैत्य पुरुषका प्रथम यंत्र है। इसी युक्तिपूर्ण संकल्प-शक्तिका हमें उपयोग करके यह सीखना चाहिये कि एक पशु-मानवकी तरह नहीं वरन् सच्चे मनुष्यकी तरह, देवत्वके उम्मीदवारकी तरह कैसे जीना चाहिये।

और इस सिद्धिकी ओर जानेका पहला पग है इस शरीरका एक अक्षम दास न रह, इसका प्रभु बन जाना।

इस लक्ष्यको प्राप्त करनेमें अत्यंत उपयोगी सहायता देनेवाली चीज है शारीरिक साधना, अर्थात् व्यायाम।

लगभग एक शताब्दीसे उस ज्ञानका पुनरुद्धार करनेका प्रयास हो रहा है जिसे प्राचीन युगोंमें बहुत महत्त्व दिया जाता था और जिसे लोग अंशतः भूल गये हैं। अब यह पुनः जागृत हो रहा है और आधुनिक विज्ञानकी प्रगतिके साथ-साथ यह भी एक नवीन विस्तार और महत्त्वको प्राप्त करता जा रहा है। यह ज्ञान स्थूल शरीर तथा उस असाधारण प्रभुत्वकी चर्चा करता है जो प्रबुद्ध और विधिबद्ध शारीरिक शिक्षणकी सहायतासे शरीरके ऊपर प्राप्त किया जा सकता है।

यह पुनरुद्धार एक नयी शक्ति और ज्योतिकी क्रियाका फल है जो निकट भविष्यमें सिद्ध होनेवाले महान् रूपांतरकी सिद्धिके योग्य शरीरको तैयार करनेके लिये पृथ्वीपर फैल गयी है।

हमें इस शारीरिक शिक्षणको प्रधान महत्त्व देनेमें हिचकिचाना नहीं चाहिये जिसका उद्देश्य ही है हमारे शरीरको इस योग्य बना देना कि वह पृथ्वीपर अभिव्यक्त होनेका प्रयास करनेवाली नवीन शक्तिको ग्रहण और प्रकट करने लगे।

इतना कहकर अब मैं उन प्रश्नोंका उत्तर देती हूं जिन्हें तुमने मेरे सामने रखा है।

(१)

अपने मासिक कालके प्रति किसी लड़कीका मनोभाव क्या होना चाहिये ?

वही मनोभाव होना चाहिये जो तुम किसी एकदम स्वाभाविक और अपरिहार्य वस्तुके प्रति रखते हो। इसे यथासंभव कम-से-कम महत्त्व दो और इसके कारण कोई परिवर्तन किये बिना अपने सामान्य जीवनको नियमित रूपसे चलाती रहो।

(२)

क्या अपने ऋतु-कालमें किसी लड़कीको अपने शारीरिक शिक्षण-के नियमित कार्यक्रममें भाग लेना चाहिये ?

यदि शारीरिक व्यायाम करनेका उसे अभ्यास हो तो उसे निश्चय ही इस कारण उसे बन्द नहीं करना चाहिये। यदि कोई अपना सामान्य जीवन बितानेका अभ्यास सर्वदा बनाये रखे तो बहुत शीघ्र उसे ऐसी आदत पड़ जायगी कि उसे पता भी नहीं चलेगा कि उसे मासिक हो रहा है।

(३)

कुछ लड़कियां अपने ऋतु-कालमें क्यों पूर्ण रूपसे दुर्बल हो जाती हैं तथा अपनी पीठके निचले भागमें और पेटमें दर्दका अनुभव करती हैं; जब कि दूसरोंको कोई असुविधा नहीं होती या बहुत मामूली-सी असुविधा होती है ?

यह प्रश्न व्यक्तिके स्वभाव तथा अधिकांशतः शिक्षाका है। यदि किसी लड़कीको अपने बचपनसे ही यह अभ्यास हो गया हो कि वह बिलकुल मामूली तकलीफकी ओर भी बहुत अधिक ध्यान देती हो और अत्यंत तुच्छ असुविधाके लिये भी बहुत अधिक हाय-तोबा मचाती हो तो वह सहन करनेकी सारी क्षमता खो बैठेगी और कोई भी चीज उसके दुर्बल होनेका कारण बन जायगी। विशेषकर यदि मां-बाप अपने बच्चोंकी प्रतिक्रियाओंके विषयमें बहुत शीघ्र चिंतित हो उठें तब तो उसका असर और भी बुरा होगा। अधिक बुद्धिमानीकी बात यही है कि बच्चोंको थोड़ा बलशाली और सहनशील होनेकी शिक्षा दी जाय और उन सब छोटी-मोटी असुविधाओं और दुर्घटनाओंके प्रति कम-से-कम दुश्चिंता करना सिखाया जाय जिनसे जीवनमें सर्वदा बचा नहीं जा सकता। शांत सहिष्णुताका भाव ही सबसे उत्तम मनोभाव है जिसे मनुष्य स्वयं अपने लिये धारण कर सकता है और अपने बच्चोंको भी सिखा सकता है।

यह बिलकुल जानी हुई बात है कि यदि तुम किसी कष्टकी आशा करो तो वह अवश्य तुम्हें प्राप्त होगा, और, एक बार यदि वह आ जाय और तुम उसपर अधिक ध्यान दो तो वह अधिकाधिक बढ़ता जायगा और जबतक कि वह, जैसा कि साधारणतया उसे नाम दिया जाता है "असह्य" ही न हो उठे, यद्यपि थोड़ी-सी संकल्प-शक्ति और साहसका प्रयोग करनेपर ऐसा कोई दुःख-दर्द नहीं जिसे सहा न जा सके।

(४)

कोई लड़की अपने ऋतु-कालके दुःख-दर्दको कैसे जीत सकती है?

कुछ व्यायाम ऐसे हैं जो पेटको मजबूत बनाते तथा रक्तप्रवाहको बढ़ाते हैं। इन व्यायामोंको नियमित रूपसे करते रहना चाहिये और दर्दके दूर हो जानेपर भी इन्हें जारी रखना चाहिये। बड़ी

उम्रकी लड़कियोंको इस प्रकारका दर्द प्रायः पूर्ण रूपसे काम-वासनाके कारण होता है। यदि हम वासनाओंसे मुक्त हो जायं तो हम दर्दसे भी मुक्त हो जाते हैं। वासनाओंसे मुक्त होनेके दो उपाय हैं: पहला है प्रचलित उपाय, वासनाकी तृप्ति (अथवा यों कहें कि इसे यह नाम दिया जाता है, क्योंकि वासनाके राज्यमें "तृप्ति" नामकी कोई चीज है ही नहीं)। इसका अर्थ है साधारण मानव-पशुका जीवन विताना — विवाह, संतान और इसकी बाकी सभी चीजें।

निस्संदेह एक दूसरा पथ भी है, उससे कहीं अच्छा पथ है और वह है संयम, प्रभुत्व, रूपांतरका पथ; यह कहीं अधिक महान् और अधिक प्रभावशाली है।

(५)

क्या आपकी रायमें लड़कों और लड़कियोंके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके व्यायाम होने चाहिये? क्या तथाकथित पुरुषोचित खेल-कूदोंका अभ्यास करनेसे लड़कीके जननेंद्रिय आदि अंगोंको हानि पहुंच सकती है?

सभी प्रसंगोंमें, जैसे बालकोंके लिये वैसे ही बालिकाओंके लिये, व्यायामोंको प्रत्येक व्यक्तिकी शक्ति और क्षमताके अनुसार क्रमबद्ध कर देना चाहिये। यदि कोई दुर्बल छात्र एकाएक कठिन और भारी व्यायाम करनेकी कोशिश करे तो वह अपनी मूर्खताके कारण दुःख भोग सकता है। परंतु, यदि बुद्धिमानीके साथ और धीरे-धीरे शिक्षा दी जाय तो बालिकाएं और बालक दोनों ही सब प्रकारके खेलोंमें भाग ले सकते हैं और इस प्रकार अपनी शक्ति और स्वास्थ्यको बढ़ा सकते हैं।

बलवान् और स्वस्थ बननेसे शरीरको कभी कोई हानि नहीं पहुंच सकती, भले ही वह शरीर स्त्रीका ही क्यों न हो!

(६)

क्या कठिन व्यायामका अभ्यास करनेसे किसी लड़कीकी आकृति बदल जायगी और वह एक पुरुषकी आकृतिकी तरह मांसल हो जायगी और इस कारण वह लड़की कुरूप दिखायी देने लगेगी ?

दुर्वलता और क्षीणता भले ही किसी विकृत मनकी दृष्टिमें आकर्षक प्रतीत हों, पर यह प्रकृतिका सत्य नहीं है और न आत्मा-का ही सत्य है। यदि तुमने कभी व्यायाम करनेवाली स्त्रियोंके चित्रोंको देखा हो तो तुम्हें पता चलेगा कि उनका शरीर कितना पूर्ण सुन्दर होता है; और कोई भी व्यक्ति यह अस्वीकार नहीं कर सकता कि उनका शरीर मांसल ही होता है !

(७)

यदि कोई लड़की विवाह करना चाहे और पीछे उसे बच्चा हो तो क्या कठिन व्यायामोंके करनेके कारण उसे बच्चा होते समय अधिक कठिनाइयां होंगी ?

मैंने ऐसा कोई उदाहरण कभी नहीं देखा। वल्कि इसके विप-रीत, जो स्त्रियां कठिन व्यायाम करनेकी शिक्षा प्राप्त करती हैं और सुदृढ़ मांसल शरीरवाली होती हैं वे बच्चा धारण करने और पैदा करनेकी कठिन परीक्षामें कहीं अधिक आसानी और कम दर्दके साथ उत्तीर्ण होती हैं।

मैंने अफ़्रीकाकी उन स्त्रियोंकी एक विश्वसनीय कहानी सुनी है जो भारी वोझ लेकर मीलों यात्रा करनेकी आदी होती हैं। एक स्त्री गर्भवती थी और एक दिन यात्रा करते समय ही उसके बच्चा जननेका समय हो गया। वह रास्तेमें एक किनारे एक पेड़के नीचे

बैठ गयी, उसका बच्चा भूमिष्ठ हुआ, आधा घंटा उसने विश्राम किया, फिर वह उठ खड़ी हुई और अपने पुराने बोझके साथ-साथ बच्चेको भी लेकर चुपचाप अपने रास्तेपर चल पड़ी, मानो उसे कुछ भी न हुआ हो। यह इस बातका अत्यंत उज्ज्वल उदाहरण है कि स्वास्थ्य और शक्तिपर पूर्ण अधिकार रखनेवाली एक नारी क्या कर सकती है।

डॉक्टर कहेंगे कि मनुष्यजातिने आज जितनी भी प्रगति की है उस सबके होते हुए भी किसी सभ्य समाजमें इस तरहकी बात कभी घटित नहीं हो सकती; परंतु हम यह अस्वीकार नहीं कर सकते कि शरीरकी दृष्टिसे देखा जाय तो आधुनिक सभ्यताओंने जो संवेदन-शीलता, दुःख-कष्ट और जटिलता उत्पन्न की है उसके मुकाबले यह कहीं सुखदायी स्थिति है।

इसके अलावा, साधारणतया डॉक्टर लोग अस्वाभाविक प्रसंगों-में ही अधिक दिलचस्पी लेते हैं और वे अधिकांशतः उसी दृष्टिकोण-से विचार करते हैं। परंतु हमारे लिये बात इससे भिन्न है; हम स्वाभाविकसे अतिस्वाभाविककी ओर जा सकते हैं, न कि अस्वा-भाविकसे, जो कि सर्वदा ही पथभ्रष्टता और निकृष्टताका चिह्न होता है।

(८)

नारीत्वकी दृष्टिसे बालिकाओंके लिये शारीरिक शिक्षणका क्या आदर्श होना चाहिये ?

मेरी समझमें नहीं आता कि लड़कोंसे भिन्न लड़कियोंके लिये शारीरिक शिक्षणका कोई विशेष आदर्श क्यों होना चाहिये ?

शारीरिक शिक्षणका उद्देश्य है मानव शरीरकी सभी संभावनाओं-को विकसित करना, जैसे, सुसामंजस्य, शक्ति, नमनीयता, चतुरता, फुर्तीलापन, सहनशीलता आदिकी संभावनाओंको प्रस्फुटित करना, अपने अंगों और इन्द्रियोंकी क्रियाओंपर अपना अधिकार बढ़ाना, एक सज्ञान

संकल्प-शक्तिके व्यवहारके लिये शरीरको एक सर्वांगपूर्ण यंत्र बनाना। यह कार्यक्रम सभी मानव प्राणियोंके लिये एक समान उत्तम है, और ऐसा कोई कारण नहीं कि लड़कियोंके लिये कोई दूसरा कार्यक्रम स्वीकार करनेकी कामना की जाय।

(९)

हमारी नवीन जीवन-पद्धतिके अंदर पुरुष और स्त्रीका प्रधान कार्य क्या होना चाहिये? उनमें परस्पर क्या संबंध होगा?

भला दोनोंके बीच तनिक भी विभेद क्यों किया जाय? वे दोनों ही एक जैसे मानव प्राणी हैं जो वर्ग, जाति, धर्म तथा राष्ट्रीयताके परे भागवत कार्यके लिये उपयुक्त यंत्र बननेकी चेष्टा करते हैं, जो एक ही अनन्त दिव्य माताकी संतान हैं तथा एक ही शाश्वत भगवान्‌को प्राप्त करनेकी अभीप्सा रखते हैं।

(१०)

नारीके शारीरिक सौंदर्यका क्या आदर्श होना चाहिये?

अंगोंके परिमाणमें पूर्ण सामंजस्य, कोमलता और बल-सामर्थ्य, कमनीयता और क्षमता, नमनीयता और दृढ़ता, तथा सबसे बढ़कर, अति उत्तम, एक-रूप और अपरिवर्तनशील स्वास्थ्य जो एक शुद्ध-चरित्र आत्मा बननेका, जीवनमें समुचित विश्वास तथा भागवत कृपा-में अटल श्रद्धा-विश्वास रखनेका परिणाम होता है।

अंतमें एक बात और जोड़ दूं:

मैंने ये सब बातें तुमसे इसलिये कही हैं कि तुम्हें इन्हें सुननेकी आवश्यकता थी, पर तुम इन्हें अकाट्य सिद्धांतका रूप मत दे देना क्योंकि ऐसा करनेपर ये अपना सत्य ही खो बैठेंगी।

योगमें स्त्री और पुरुषका संबंध
तथा
उनकी लैंगिक प्रकृतियां

इस योगमें स्त्री और पुरुष साधक-साधिकाओंके योग्य स्वतंत्र और स्वाभाविक संबंध स्थापित करनेमें सफल हों — इसके लिये सामान्यतः एकमात्र तरीका यह है कि वे एक-दूसरेसे इस प्रकार मिल-जुल सकें कि उन्हें कभी ख्याल न आये कि एक पुरुष है तथा दूसरी स्त्री — बस, दोनों केवल मनुष्य हैं, दोनों साधक हैं, दोनों भगवान्‌की सेवा करनेमें तत्पर हैं तथा केवल भगवान्‌को ही खोज रहे हैं, और किसीको नहीं। यह भाव अपने अंदर पूरी तरहसे धारण कर लो तो फिर किसी प्रकारकी कठिनाई आनेकी संभावना नहीं।

*

किन्हीं दो व्यक्तियोंमें वैयक्तिक संबंध तब पैदा होता है जब वे अनन्य भावसे एक-दूसरेके मुखापेक्षी होकर रहते हैं। इस योगमें वैयक्तिक संबंधोंके विषयमें यह द्विविध नियम है : (१) सभी वैयक्तिक संबंध साधक और भगवान्‌के एकनिष्ठ संबंधमें विलीन हो जाने चाहिये, (२) सभी वैयक्तिक (आंतरात्मिक-आध्यात्मिक) संबंध भगवती मातासे ही निःसृत, उन्हींसे निर्धारित और उन्हींके साथ अनन्य संबंधके अंगभूत होने चाहिये। जहांतक अन्य कोई वैयक्तिक संबंध इस द्विविध नियममें दृढ़ रह सकता है और किसी शारीरिक भोग-विलास या प्राणिक विकार या मिश्रणको घुसने नहीं देता वहां-तक वह रखा जा सकता है। परंतु, क्योंकि अभीतक अतिमानसका प्रभुत्व स्थापित नहीं हुआ है, अभी वह अवतरित हो ही रहा है

और प्राणिक एवं भौतिक स्तरोंमें अब भी संघर्ष चल रहा है, अतएव, अत्यधिक सजग रहनेकी आवश्यकता है। यदि अबतक अतिमानसिक रूपांतर हो चुकता तो ऐसी सजगताकी जरूरत न पड़ती। दोनोंको चाहिये कि वे माताजीसे सीधा संबंध रखें और पूर्ण रूपसे उन्हींपर निर्भर रहें और यह देखें कि ऐसा संबंध बना रहे और इसकी पूर्णताको कोई भी चीज लेशभर भी कम न करे या खंडित न कर डाले।

*

(१) आश्रममें साधक-साधिकाके बीच समस्त स्थूल कामुक संबंध या संसर्ग सर्वथा निषिद्ध एवं अग्राह्य है।

(२) कामुक ढंगसे सभी प्राणगत संबंध साधनाके प्रतिकूल हैं और इसलिये जो लोग आश्रममें रहना तथा योगमें उन्नति करना चाहते हैं उन्हें भी ऐसे सभी संबंध त्यागने होंगे।

(३) यहांतक कि पति-पत्नीको भी सारे वैवाहिक संबंध समाप्त कर एक-दूसरेको सह-साधकमात्र समझना होगा, न कि पति और पत्नी। साधक यहां स्त्री और पुरुषके रूपमें नहीं रह रहे हैं; वे यहां किसी भी बहाने आपसमें प्राणिक या शारीरिक कामुक संबंध जारी रखने या बनानेके लिये नहीं बल्कि साधना करनेके लिये आये हैं।

(४) जो कोई भी साधक आंतरात्मिक या आध्यात्मिक संबंधके बहाने दूसरोंसे प्राणिक संबंध स्थापित करता है वह अपने-आपको धोखा दे रहा है और सत्यका उल्लंघन एवं योगके नियमका भंग कर रहा है।

(५) किसी भी साधकको किसी दूसरे साधककी पूजा नहीं करनी चाहिये, अथवा, उसे साक्षात् भगवान् नहीं मानना चाहिये; ऐसी चेष्टाएं साधनाके एवं आश्रमके अनुशासनके प्रतिकूल हैं और वायुमंडलमें मिथ्या प्रवृत्तियोंको जन्म देती हैं।

समाज-सुधारक

समाज सुधारक कुछ युक्तियोंको दकियानूसी विचारोंकी तरह दोहराता रहता है। वह इन पुरानी बातोंके लिये पागल होता है, उसके लिये जहाद करता रहता है। साधारणतः वह अपने विचारोंके अनुसार आचरण नहीं करता, लेकिन वह पूरी सचाईके साथ उनसे अनुराग रखता है और उनके लिये लड़ता-झगड़ता है। वह रामबाणकी तरह उनकी घोषणा करता है, उनकी क्षमता या उनके प्रभावके बारेमें शंका करना या परीक्षण करना उसकी दृष्टि-में नास्तिकता या विश्वासघात है। उसके यूरोपीय डाक्टरोंने उसे बतलाया है कि बाल-विवाह जातिके शरीरके लिये हानिकर है और यह बात उसके लिये वेद-वाक्य है। यह याद रखना उसके लिये सुविधाजनक नहीं है कि भारतमें शारीरिक ह्रास एक नयी चीज है, कि हमारे पुरखे मजबूत, ओजस्वी और सुन्दर होते थे। वह गायब होती हुई नाचनेवालियोंकी जड़ खोदनेके लिये तत्पर रहता है लेकिन ऐसा लगता है कि उसे इस बातकी परवाह नहीं है कि वेश्याओंकी संख्या बढ़ती जाती है। हो सकता है कि कुछ तो यह भी सोचते हैं कि यह एक लाभदायक चीज है कि बीमारीके भारतीय रूपका स्थान यूरोपीय रूप ले रहा है। वह हमारे समाज-की सहकारी पद्धतिको तोड़नेमें लगा है पर यह नहीं देखता कि यूरोप दानवी पग उठाता हुआ समाजवादकी ओर बढ़ रहा है।

कट्टरपंथी हों या सुधारक, वे अपने-आपको समान रूपसे ब्योरे-की बातोंमें खो देते हैं, लेकिन ब्योरोंको निश्चित रूप तो सिद्धांत ही देते हैं। समाजके स्थायी कल्याणपर कोई भी असर डाले बिना समाज-सुधारकोंकी उठायी हुई सभी बातोंका इस या उस ओर फैसला किया जा सकता है। वह एक दयनीय दृश्य होता है जब लोग उपजातियोंके बीच ब्याह करानेके मामलेपर श्रम करते

हैं और इक्के-दुक्के उदाहरणोंमें सफलता पाकर फूले नहीं समाते। आधुनिक प्रश्न तो यह है कि जातिके भाव और उसकी देहको रहना भी चाहिये या नहीं। हिंदू इस वातको याद रखें कि अपने वर्तमान रूपमें जाति केवल शिल्पीसंघके जैसी चीज है जिसे स्वीकृति दे दी गयी है पर अब वह काम नहीं कर रही। यह शाश्वत धर्म नहीं है, यह वर्ण व्यवस्था नहीं है। मैं इस बातकी परवाह नहीं करता कि विधवाएं फिरसे व्याह करती हैं या विना व्याही रहती हैं, परंतु इस वातपर विचार करना वहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि वैधानिक और सामाजिक तौरपर स्त्रीका पुरुषके साथ क्या संवंध होगा। वह उसके अधीन रहेगी, समान होगी या उससे श्रेष्ठ होगी क्योंकि भविष्यमें श्रेष्ठताका संवंध भी असंभव नहीं है जैसा कि वह सुदूर भूतकालमें था। और सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि समाजका रूप प्रतियोगी होगा या सहयोगी, व्यक्तिवादी होगा या साम्यवादी। यह बात सामान्य भारतीय वुद्धिकी दरिद्रताको वड़े दुःखद रूपमें प्रकट करती है कि हम इन महत्त्वपूर्ण वातोंपर इतनी कम वातचीत करते हैं लेकिन नगण्य व्योरेकी वातोंपर तूफान खड़े कर देते हैं। अगर इन वड़ी चीजोंका फैसला हो जाय, जैसा होना चाहिये, तो छोटी-मोटी वातें अपने-आप ठीक हो जायंगी।

(सेंटेनरी वोल्यूम ३, १२२-२३)

संपत्ति-भाव

लेकिन हमें स्वतंत्र समुदायमें रहनेवाले स्वतंत्र व्यक्तिसे आरंभ करना होगा क्योंकि तभी हम स्वाधीनताके स्वस्थ विकासके बारेमें निश्चित हो सकते हैं और इसलिये भी कि हमें जो एकता प्राप्त करनी है वह पूर्णताकी ओर स्वाधीन रूपसे बढ़ते हुए व्यक्तियोंकी एकता है, मानव यंत्रोंकी एकता नहीं जिन्हें नियंत्रित सामंजस्यमें रखा गया हो या ऐसी आत्माएं हों जिन्हें काट-छांटकर एक या अनेक ज्यामितिके निश्चित रूप दे दिये गये हों। जिस क्षण हम इस विचारको सच्चाईसे स्वीकार करें उसी क्षण हमें मनुष्यपर मनुष्यके पुराने संपत्तिके अधिकारके विचारसे बहुत दूर यात्रा करनी पड़ती है। यह विचार अब भी मनुष्यमें जहां यह अधिकार नहीं है वहां भी लुका-छिपा रहता ही है। हमारे सारे भूतकालमें यह रहा है। बच्चेपर बापका संपत्ति स्वरूप अधिकार, पुरुषका स्त्रीपर, शासक या शासक वर्ग या शासक शक्तिका शासितोंपर या सरकारका व्यक्तिपर अधिकार। पुराने, पिताकी सत्ताको माननेवालोंमें बच्चा पिताकी चल-संपत्ति था। बच्चा बापकी सृष्टि, उसकी अपनी पैदावार, उसका अपना प्रतिरूप था। भगवान् या भगवान्की जगह वैश्व जीवन नहीं बल्कि पिता बालककी सत्ताका कर्ता था। स्रष्टाको अपनी सृष्टिपर, उत्पादकको अपने उत्पादनपर पूरा-पूरा अधिकार था। उसे यह अधिकार था कि वह उसे जो चाहे वह बनाये, यह नहीं कि यह देखे कि बच्चेकी अपनी सत्ता अंदरसे क्या है। उसे अधिकार था कि वह बच्चेको उसकी अपनी गभीर आवश्यकताओंके अनुसार नहीं बल्कि पैतृक विचारोंके अनुसार प्रशिक्षित करे और काट-छांटकर रूप दे। उसे अधिकार था कि बालककी प्रकृति, क्षमता और प्रवृत्तिके अनुसार नहीं बल्कि बाप-दादोंके पेशे या उनके चुने हुए पेशेके साथ बांध दे और उसके जीवनके सभी महत्त्वपूर्ण

मोड़ोंपर, उसके वयस्क हो जानेपर भी, उसका रास्ता निश्चित करे। शिक्षामें बच्चेको एक विकसनशील आत्मा नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक पाशविक द्रव्य माना जाता था जिसे अध्यापक रूप देता या निर्धारित सांचेमें ढालता था। हम वहांसे दूर जा चुके हैं और अब बच्चेके बारेमें यह विचार काम करता है कि वह एक अंतरात्मा है जिसकी अपनी सत्ता है, अपनी प्रकृति है, अपनी क्षमताएं हैं। उन्हें खोजनेमें हमें उसकी मदद करनी चाहिये, उसे अपने-आपको खोजने, अपनी क्षमताओंकी परिपक्वतामें विकसित होने, भौतिक और प्राणिक ऊर्जाकी पूर्णता, उसकी भावात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सत्ताके अधिक-से-अधिक विस्तार, गहराई और ऊंचाईतक पहुंचनेमें सहायता देनी चाहिये। इसी प्रकार स्त्रियोंकी अधीनता, स्त्रियोंपर पुरुषोंका संपत्ति-भाव, एक बार सामाजिक जीवनमें स्वयंसिद्ध तथ्य था और अभी हालमें ही इसे सफल रूपसे चुनौती दी गयी है। मानव पशुके नरमें यह सहजवृत्ति इतनी मजबूत थी, या हो गयी थी कि धर्म और दर्शनको भी इसे स्वीकृति देनी पड़ी — बहुत कुछ मिल्टनके सूत्रके अनुसार जो पुरुषके अहंकारके बहुत ऊंचे रूपको प्रकट करता है: "वह (नर) केवल भगवान्के लिये और वह (नारी) नरमें विद्यमान भगवान्के लिये" — यदि यूं नहीं "भगवान्की जगह नरके लिये"। यह विचार भी अब धूलमें मिलता जा रहा है यद्यपि उसके अवशेष अभीतक पुराने विधानों, प्रचलित सहजवृत्ति, परंपरागत विचारोंकी दृढ़ता आदिकी स्पर्शिकाओंके द्वारा अभीतक जीवनसे चिपके हैं। इन चीजोंके विरुद्ध इस रूपमें आदेश हो चुका है कि नारीको भी स्वतंत्र व्यक्ति माने जानेका अधिकार है। स्वाधीनता और जनतंत्रके विकासके साथ-साथ शासितोंपर शासकोंके संपत्ति-भावका अंत हो गया है। वह राष्ट्रीय साम्राज्यवादके रूपमें अभीतक बाकी है। यद्यपि अब राजनीतिक आधिपत्यके भावके रूपमें नहीं, व्यापारिक लोलुपताके रूपमें है। बौद्धिक रूपसे भी इस अधिकार या स्वामित्वके अहंपर घातक चोट पड़ चुकी है परंतु जीवनमें वह अभी

बचा हुआ है। ऐसा लग रहा था कि इन सबका स्थान ले लेगा व्यक्तिपर प्रशासनका स्वामित्व। लेकिन इसके आध्यात्मिक परिणाम-स्वरूप युद्धके डरावने प्रकाशने इसे भी पीछे हटा दिया है और हम आशा कर सकते हैं कि ज्यादा स्पष्ट ज्ञानके कारण मानव स्वाधीनता-के लिये यह संकट कम होता जायगा। कम-से-कम हम एक ऐसे बिंदुकी ओर बढ़ रहे हैं जहां मानव जातिके रूप देनेके लिये आत्म-निर्णयके सिद्धांतको उपस्थित और अत्यावश्यक तो माना ही जायगा, चाहे अभी प्रधान शक्ति न माना जाय।

(सेंटिनरी वोल्यूम १५, ६०५-०६)

परिवार-त्यागकी वृत्ति

तुम जिस प्रवृत्तिकी बात कर रहे हो — आध्यात्मिक जीवनके लिये परिवार और सामाजिक जीवनके त्यागनेकी प्रवृत्ति — भारत-वर्षमें पिछले दो हजार वर्षोंसे, बल्कि इससे भी ज्यादासे, परंपरा रूपमें चली आयी है। और यह विशेष रूपसे पुरुषोंमें है। इसने स्त्रियोंकी बहुत ही कम संख्याको छुआ है। यह याद रखना चाहिये कि भारतके सामाजिक जीवनने व्यक्तिको लगभग पूरी तरह परि-वारके आधीन कर दिया है। स्त्री-पुरुष अपनी स्वतंत्र इच्छाके अनुसार ब्याह नहीं करते। उनके ब्याह प्रायः, एकदम बचपनमें ही निश्चित कर दिये जाते हैं। यही नहीं, समाजका सांचा बहुत जमाने-से लगभग लौह दृढ़ताके साथ हर व्यक्तिका स्थान निश्चित करता आया है और हरएकसे यही आशा की गयी है कि वह उसके अनु-सार चलेगा। 'तुम समस्याओं और उनके साहसपूर्ण समाधानकी बात करते हो लेकिन इस जीवनमें कोई समस्या ही नहीं है और समाधानकी जरूरत ही नहीं है — साहसपूर्ण समाधान वहीं संभव

होगा जहां व्यक्तिगत इच्छा-शक्तिको स्वाधीनता प्राप्त हो लेकिन जहां एकमात्र समाधान (यदि तुम इस जीवनमें रहना चाहो) है परिवारकी इच्छाके आगे झुकना, वहां इस प्रकारकी कोई चीज नहीं हो सकती। यह सुरक्षित जीवन होता है और सुखी भी हो सकता है यदि व्यक्ति अपने-आपको उसके अनुकूल बना सके; उसके अंदर असाधारण अभीप्साएं न हों और अपने परिवेशके बारेमें भी भाग्य-शाली हो। लेकिन इसके पास असंगतियों या किसी प्रकारकी व्यक्तिगत कुंठाका कोई इलाज या बचनेका उपाय नहीं है। इसमें किसी पहल-शक्ति, किसी स्वच्छंद गति-विधि या व्यक्तित्वके लिये कोई गुंजाइश नहीं रहती। व्यक्तिके लिये बाहर निकलनेका बस एक ही रास्ता होता है और वह है अपने अंदर आध्यात्मिक जीवन या धार्मिक जीवनमें प्रवेश। इसके लिये किसी प्रकारके संन्यासद्वारा संसारका, पारिवारिक जीवनका परित्याग ही मान्यता-प्राप्त छुटकारा है। संन्यासी या वैष्णव वैरागी या ब्रह्मचारी स्वतंत्र हैं। वे कुटुम्बके लिये मृतके समान हैं और वे अपनी आंतरिक आत्माके आदेशके अनुसार रह सकते हैं। लेकिन अगर वे किसी संप्रदाय या आश्रममें प्रवेश करें तो उन्हें संप्रदायके नियमोंका पालन करना पड़ता है। यह उनका अपना चुनाव होता है। समाजने अपने-आपसे छुटकारा पानेके लिये इस मार्गको मान्यता दी, धर्मने सामाजिक या सांसारिक जीवनके प्रति अरुचिको, संन्यास या धार्मिक घुमक्कड़पन-को करनेके लिये उचित कारण माना। लेकिन यह प्रधानता पुरुषों-के लिये ही थी। प्राचीन कालमें बौद्ध नारियोंके लिये अपने संघ होते थे। बादमें वैष्णवोंमें भी कुछ ऐसी व्यवस्था थी, इन्हें छोड़-कर स्त्रियोंके लिये कहीं छुटकारेका रास्ता न था जबतक कि इतनी प्रबल आध्यात्मिक प्रेरणा न हो जो किसी प्रकारकी अस्वी-कृतिको न माने। रही बात संन्यासीके छोड़े हुए बाल-बच्चों और पत्नीकी, उनके लिये कोई कठिनाई नहीं थी क्योंकि संयुक्त परिवार उनके भरण-पोषणकी जिम्मेदारी ले लेता था, लिये रहता था।

वर्तमान अवस्थामें हुआ यह है कि पुराना चौखटा तो बना है लेकिन आधुनिक विचारोंने एक असंगति या बेचैनी ला दी है। पुरानी पारिवारिक प्रथा टूट रही है और अधिकाधिक संख्यामें स्त्रियां भी छुटकारेकी वही स्वाधीनता पानेकी कोशिश कर रही हैं जो पुरुषोंको भूतकालमें हमेशा प्राप्त रही है। यह बात उन उदाहरणों-की व्याख्या करती है जो तुमने देखे हैं, लेकिन मुझे नहीं लगता कि अभीतक इनकी संख्या बहुत अधिक है। यह एक नयी चीज है। आश्रममें स्त्रियोंका प्रवेश अपने-आपमें एक नयी चीज है। अपने चारों ओरके वातावरणसे मेल न खानेवाली मानसिक और प्राणिक वृद्धिका अत्यधिक दुःख, जबरदस्ती करवायी बेमेल शादियां जिनमें पति-पत्निके बीच कोई समानता नहीं, एक ऐसा वातावरण जो व्यक्तिके आंतरिक जीवनका विरोधी और असहिष्णु हो और दूसरी ओर है भारतीय मानसकी सहज-स्वाभाविक वृत्ति जो धार्मिक या आध्यात्मिक छुटकारेकी शरण लेती है। यह नयी स्थितिको भली-भांति स्पष्ट कर देती है। अगर समाज इससे बचना चाहता है तो उसे अपने-आपको बदलना होगा। रही बात व्यक्तियोंकी, तो हर मामलेको उसके अपने गुणोंके अनुसार देखना होगा। समस्यामें बहुत ज्यादा जटिलता है, स्वभाव, स्थिति, हेतु आदिमें इतने अंतर होते हैं कि कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता।

मैंने सामाजिक समस्याके बारेमें सामान्य तौरपर ही कहा है। आश्रम-संचालनमें हमारे पास बहुत-से प्रार्थना-पत्र आये हैं जो स्पष्ट रूपसे इसीलिये लिखे गये थे कि व्यक्ति जीवनकी कठिनाइयों और जिम्मेदारियोंसे बचना चाहते थे — स्वभावतः हमने इन्हें अस्वीकार या इनकी अवहेलना की — ये पत्र प्रायः पुरुषोंकी ओरसे ही हुआ करते थे। अभी हालमें दो-एक उदाहरण स्त्रियोंके भी आये हैं, अन्यथा स्त्रियोंने दुखद विवाह या कष्टकर वातावरणके आधारपर यहां आनेके लिये प्रार्थना नहीं की। अधिकतर साधिकाएं अपने पतियोंके साथ इस आधारपर आयी हैं कि उन्होंने पहले ही योग-

साधना शुरू कर दी थी। कुछ हैं जो काफी हदतक विवाहित जीवनकी जिम्मेदारियां पूरी करके आयी हैं। दो-तीन उदाहरणोंमें पतिसे विच्छेद हुआ था परंतु यह यहां आनेसे पहलेकी बात है। कुछ उदाहरणोंमें बच्चे थे ही नहीं और कुछमें उन्हें परिवारके साथ छोड़ा गया है। कुछ साधक अपने बाल-बच्चोंको पीछे छोड़ आये हैं लेकिन मुझे नहीं लगता कि इनमेंसे कोई उदाहरण ऐसा है जिसमें घर छोड़नेका हेतु जीवनकी कठिनाइयां रही हों। बल्कि विचार यही था कि उन्हें पुकार सुनायी दी है और उसका अनुसरण करनेके लिये और सब छोड़ देना होगा।

(सेंटिनरी वोल्यूम २३, ८७०-७२)

स्त्री और पुरुषकी मैत्री

निश्चय ही पुरुष और स्त्रीकी अपेक्षा पुरुष और पुरुष तथा स्त्री और स्त्रीमें मैत्री ज्यादा आसान है क्योंकि इसमें सामान्यतः सेक्सका अनधिकार प्रवेश नहीं होता। पुरुष और स्त्रीके बीचकी मैत्रीमें किसी भी समय सेक्स सूक्ष्म रूपसे या सीधा आकर गड़बड़ पैदा कर सकता है। लेकिन पुरुष और स्त्रीके बीच ऐसी मैत्री असंभव नहीं है जिसमें यह तत्त्व न हो। ऐसी मैत्रियां रह सकती हैं और हमेशा रही हैं। जरूरत बस इस बातकी है कि निम्न प्राण पिछले दरवाजेसे झांकने या प्रवेश करने न पाये। बहुधा पुरुष और स्त्रीकी प्रकृतिमें एक ऐसा सामंजस्य, आकर्षण या साम्य होता है जो प्रकट या प्रच्छन्न निम्न प्राणकी (सेक्सकी) भूमिकाके अतिरिक्त किसी और आधारपर खड़ा होता है। यह बहुत बार

प्रधान रूपसे मानसिक या चैत्य या उच्चतर प्राणके धरातलपर आधारित होता है या इनके मिश्रणसे बनता है। ऐसी अवस्थामें मैत्री स्वाभाविक होती है और इसकी संभावना कम रहती है कि दूसरे तत्त्व आकर उसे नीचे गिरा देंगे या तोड़ देंगे।

यह सोचना भी भूल है कि केवल प्राणमें ही ऊष्मा होती है और चैत्य ज्वालाहीन ठंडी चीज है। सरल, स्वच्छ सद्भावना बहुत अच्छी और वांछनीय चीज है। लेकिन यही चैत्य प्रेम नहीं है। प्रेम प्रेम है, केवल सद्भावना नहीं। चैत्य प्रेममें प्राणके समान ही, बल्कि उससे भी बढ़कर, ऊष्मा और ज्वाला हो सकती है। हां, वह पवित्र अग्नि होती है जो अहंकारपूर्ण इच्छाओंकी तुष्टिपर निर्भर नहीं होती और न ही जिन समिधाओंका आलिंगन करती है उन्हें खा जाती है। यह लाल नहीं, श्वेत ज्वाला है लेकिन अपनी तीव्रतामें श्वेत ऊष्मा रक्त ऊष्मासे घटिया नहीं होती। यह सच है कि मानव संबंधों और मानव प्रकृतिमें सामान्यतः चैत्य प्रेमको पूरी तरह खिलनेका अवसर नहीं मिलता। उसे अपनी आग और आनंद ज्यादा आसानीसे तब प्राप्त होता है जब उसे भगवान्की ओर उठाया जाय। मानव संबंधोंमें चैत्य प्रेम अन्य तत्त्वोंके साथ मिल जाता है जो तुरंत उसका उपयोग करना और उसपर छा जाना चाहते हैं। उसे अपनी पूर्ण तीव्रता प्रकट करनेका मार्ग कभी-कदास ही मिलता है। अन्यथा यह केवल एक तत्त्वके रूपमें ही आता है। फिर भी प्रधानतः प्राणिक प्रेममें भी जितनी उच्चतर चीजें पायी जाती हैं वे सब उसीकी देन होती हैं। सारी सूक्ष्मतर मधुरता, कोमलता, निष्ठा, आत्म-दान, आत्म-त्याग, आत्मासे आत्माका मिलन, आदर्शवादी उदात्तता जो मानव प्रेमको अपनेसे परे ले जाती है — ये सब चीजें चैत्यसे आती हैं। अगर वह मानव प्रेमके अन्य तत्त्वोंपर — मानसिक, प्राणिक, भौतिक — अधिकार और शासन करते हुए उनका रूपांतर कर सके तब वह प्रेम धरतीपर उस वास्तविक चीजकी तैयारी या उसकी छाया बन सकेगा — वह है द्विविध

जीवनमें अंतरात्मा और उसके यंत्रोंका समग्र ऐक्य। लेकिन इसकी अधूरी अभिव्यक्ति भी विरल है।

हमारी दृष्टि तो यह है कि योगमें सामान्य अवस्था यह है कि प्रकृतिमें पूरी-की-पूरी ज्वाला भगवान्‌की ओर अभिमुख हो और बाकी चीजें सच्चे आधारके लिये प्रतीक्षा करें। उच्चतर वस्तुओंको सामान्य चेतनाकी बालू या दलदलकी नींव पर खड़ा करना सुरक्षित नहीं है। इससे मैत्री और साहचर्यका बहिष्कार आवश्यक नहीं हो जाता लेकिन ये चीजें पूरी तरह केंद्रिय अग्निके अधीन होनी चाहिये। इस बीच यदि कोई भगवान्‌के साथ संबंधको ही अपना एकमात्र आकर्षक लक्ष्य बना ले तो यह बिलकुल स्वाभाविक है और यह साधनाको पूरा बल प्रदान करता है। चैत्य प्रेम अपने-आपको पूरी तरह तभी पाता है जब वह उस अधिक दिव्य चेतनाका प्रसारण हो जिसे हम खोज रहे हैं। तबतक उसके लिये अपने-आपको अपने स्पष्ट, समग्र रूपमें अभिव्यक्त करना कठिन है।

पुनश्च: मन, प्राण और शरीर सचमुच अंतरात्मा और आत्माके यंत्र हैं। जब वे अपने लिये काम करते हैं तो अज्ञानमय, अपूर्ण वस्तुएं पैदा करते हैं — अगर उन्हें आत्मा और चैत्यका उचित यंत्र बनाया जा सके तो वे अपनी दिव्यतर पूर्णता प्राप्त करते हैं, हम इस योगमें जिसे रूपांतर कहते हैं उसमें यही भाव है।

*

संसारमें भी स्त्री-पुरुषोंमें ऐसे संबंध रहे हैं जिनमें सेक्स हस्त-क्षेप नहीं कर सका — वे शुद्ध चैत्य संबंध थे। लैंगिक भेदकी चेतना तो निस्संदेह रहती है लेकिन वह कामनाके स्रोतके रूपमें या संबंधोंमें गड़बड़ नहीं पैदा करती। लेकिन स्वभावत: इसके संभव होनेसे पहले चैत्य विकासके एक स्तरतक पहुंचना जरूरी है।

(सेंटिनरी वोल्यूम ३, ८१७-२०)

विवाहके बारेमें

श्रीअरविंदके शिष्य उनसे केवल आध्यात्मिक बातें ही नही पूछा करते थे बल्कि अपनी सामान्य समस्याएं भी उनके सामने रखा करते थे। एक शिष्यने विवाह करनेके बारेमें पूछा तो श्रीअरविंदकी ओर-से यह मौखिक उत्तर मिला :

"तुम्हारे मामलेमें सब कुछ तुम्हारे आदर्शपर निर्भर है। अगर तुम प्राणिक और भौतिक भोग-विलासका जीवन अपनाना चाहते हो तो तुम अपनी संगिनी कहींसे भी चुन सकते हो। लेकिन यदि ज्यादा उदात्त आदर्श है, उदाहरणके लिये, संगीत, कला या देश-सेवा, तब तुम्हारी संगिनीकी खोज कामनाके द्वारा नहीं, किसी ज्यादा ऊंची चीजके द्वारा होनी चाहिये। उस नारीके अंदर कोई ऐसी चीज होनी चाहिये जो तुम्हारी सत्ताके चैत्य भागके साथ मेल खाती हो। अगर आध्यात्मिक जीवन तुम्हारा लक्ष्य है तो व्याह करनेसे पहले पचास बार सोच लो...। यहां तुम्हें केवल साधारण नियम बताये जा रहे हैं। इसकी जटिलताको देखकर तुम अंदाज लगा सकते हो कि इसका सुस्पष्ट उत्तर देना कितना कठिन है। इन सब बातोंको अपने सामने रखते हुए तुम्हें अपने लिये अपने-आप निश्चय करना चाहिये।"

क्या सेक्सके आकर्षणके बिना स्त्रियोंके सौंदर्यकी सराहना नहीं की जा सकती?

श्रीअरविंद: यदि तुम सभी सुन्दर चीजोंकी सराहना करो, केवल

स्त्रियोंकी नहीं, और वह भी निष्काम भावसे — तब कोई हर्ज नहीं है। लेकिन यह केवल स्त्रियोंके लिये ही हो तो यह यौनाकर्षण (सेक्स-अपील)का ही अवशेष है।

नर और नारी

३०-१-१९३५

आप कहते हैं कि अति प्राचीन कालसे पुरुष स्त्रियोंको पद-दलित किये हुए हैं। लेकिन यह संभव कैसे हुआ? क्या इसमें पुरुषकी श्रेष्ठतर बुद्धि और बलके प्रति दुर्बल और निम्न सत्ताकी मौन स्वीकृति न थी?

श्रीअरविंद : उन्होंने अपनी अधिक शक्ति और चालाकीका प्रयोग किया और स्त्रीकी चैत्य प्रवृत्तिका लाभ उठाया। बस यही है। अगर तुम इसे औचित्य और न्यायसंगत मानो।

क्या स्त्रियां केवल जाति और वर्गको बनाये रखनेके लिये ही रची गयी हैं?

श्रीअरविंद : उसी तरह जैसे डाक्टर! हां, डाक्टर अपने अंदरसे जातिको उत्पन्न नहीं करता।

कहा जाता है कि नारी पुरुषकी गुरु और शक्ति है। सुननेमें बात अजीब लगती है, है न?

श्रीअरविंद : इससे ज्यादा अजीव नहीं कि पति भगवान् है (पति देवता)। माना जाता है कि पति ही स्त्रीका उचित और एकमात्र गुरु है। तो फिर पत्नी भी उसी भाषामें क्यों न बोले ? जैसेको तैसा।

क्या यह सच है कि जो एक बार पुरुष हो वह अपने अगले जन्मोंमें हमेशा पुरुष ही रहेगा और जो एक बार स्त्री बन गयी वह स्त्री ही बनती जायगी ?

श्रीअरविंद : कोई बंधा हुआ नियम नहीं है जिसमें हेर-फेर न हो सके, परतु साधारणतः यही दिशा या प्रवृत्ति रहती है।

(नीरदका पत्र-व्यवहार)

यौन शक्ति

वास्तवमें सार्वभौम यौन शक्ति ही काम करती है, लेकिन कुछ लोग इस शक्तिसे औरोंकी अपेक्षा ज्यादा भरे रहते हैं — जिसे आजकल यूरोपमें "सेक्स-अपील" कहते हैं। विशेष रूपसे सेक्स-अपील-का उपयोग स्त्रियां करती हैं और वह भी सचेतन रूपसे किसी व्यक्ति-विशेषपर इसे डालनेके इरादेके विना ही। वे जान-बूझकर किसी विशेष व्यक्तिपर इसे भेज सकती हैं लेकिन हो सकता है कि वह और बहुतोंपर असर करे जिन्हें फंसानेकी उसमें कोई खास इच्छा नहीं है। सभी स्त्रियोंमें सेक्स-अपील नहीं होती पर अधिकतर स्त्रियोंमें यौन आकर्षणकी कोई शक्ति होती है। हां, पुरुषोंमें स्त्रियोंके लिये ऐसा ही आकर्षण होता है।

*

ये स्पंदन नारीके एक स्मित या किसी गति, किसी रूप-रंग या किसी क्रियासे शुरू हो सकते हैं। मुझे नहीं लगता कि स्वयं मुस्कानके अदंर कोई चीज निहित होती है। लेकिन ये सब चीजें, ये हाव-भाव पुरुषोंमें सेक्स जगानेके साधन रहे हैं और स्त्री प्रायः बिना जाने ही केवल आदतके अनुसार पुरुषके संपर्कमें आनेपर इनका उपयोग करती है — उसका पुरुषको खुश करने या प्रभावित करनेका इरादा हो या न हो। यह चीज सहज गतिके रूपमें आ जाती है। 'क' उस प्रकारकी स्त्री है जिसके अंदर पुरुषको प्रसन्न करनेकी यह सहजगति होती है। लेकिन जब स्त्री संयोगवश, इस सहज वृत्तिके बिना ही मुस्कराये तब भी नारीके आकर्षणके प्रति स्वभाविक प्रतिक्रियाके रूपमें पुरुषमें स्पंदन पैदा हो सकते हैं। ये चीजें आरंभमें बिलकुल यंत्रवत् होती हैं। जैसा कि मैंने पहले लिखा था, यह भौतिक या प्राणिक मन (कल्पना आदि) की यांत्रिक प्रतिक्रिया है जो उसे लंबा खींचती और प्रभावकारी बनाती है अन्यथा स्पंदन कुछ समयके बाद ही मुरझा जाएंगे।

*

हो सकता है कि उसमें तुम्हारे लिये यौन संवेदन न हो लेकिन एक प्रकारका प्राणिक आवेग तो है ही जो अपनी स्पर्शिकाएं फेंकता रहता है — मुझे नहीं मालूम इसे ठीक कैसे व्यक्त किया जाय। प्रकृतिमें इसका गुप्त उद्देश्य है पुरुषको आकर्षित करना, उसका ध्यान खींचकर स्त्रीपर केंद्रित करना, उसे कम या अधिक प्रमाणमें खींचना और फंसाना। यह हो सकता है कि स्त्रीके मनमें इसका जान-बूझकर कोई इरादा न हो, यानी, हो सकता है कि यह उसके मनमें स्पष्ट न हो या उपस्थित भी न हो — यह बिलकुल सहज या अवचेतन हो। इसमें भौतिक यौन क्रियाका इरादा होनेकी जरूरत नहीं है, केवल प्राणकी सहजगति हो सकती है। प्राणिक स्वभावकी

प्रधानतावाली सभी स्त्रियोंमें (और 'क' ऐसी ही है) यह चीज होती है, किसीमें कम, किसीमें ज्यादा। हो सकता है कि उसमें कोई विशेष यौन आवेग न हो फिर भी वह पुरुषमें यौन विचार उभारती है। स्वभावतः 'क' को कोई मनोवैज्ञानिक ज्ञान नहीं है और उसके अनुभव करने या देख पानेके लिये ये चीजें बहुत ज्यादा सूक्ष्म हैं। वह आसानीसे यह समझ सकती है कि वह पूरी तरह निर्दोष और स्वाभाविक ढंगसे चल रही है और हो सकता है कि वह अपने अंदर प्रकृतिके इस दवावकी क्रियाके बारेमें कुछ न जानती हो।

*

स्त्रियोंने हमेशा ही वेश-भूषाका उपयोग उस चीजमें सहायताके रूपमें किया है जिसे आजकल "सेक्स-अपील" कहते हैं और पुरुष हमेशा इसके प्रति संवेदनशील रहे हैं। स्त्रियोंको भी पुरुषके वेशकी ओर आकर्षण होता है (उदाहरणके लिये फौजी वर्दीकी ओर)। वेशमें भी विशेष रुचियां होती हैं। यह एक सामान्य-सी बात है कि किसी विशेष रंगकी साड़ी आकर्षित करे। यह आकर्षण इंद्रियों और प्राणपर क्रिया करता है जब कि मन मनोवैज्ञानिक दोषोंको नापसंद करता है और उनके प्रकट होनेपर ठंडा पड़जाता है। लेकिन अधिक बलवान् प्राणिक आकर्षणके आगे मनकी यह अरुचि टिक नहीं पाती।

(सेंटिनरी वाल्यूम २४, १५२१-२२)

*

ऐसी बहुत-सी स्त्रियां हैं जो मन, चैत्य, प्राण (हृदय) से प्रेम कर सकती हैं परंतु जरा-से शारीरिक स्पर्शसे कतराती हैं। यह चीज चली भी जाय तो भी शारीरिक क्रिया उनके लिये घृणास्पद

वनी रहती है। वे दवावके कारण झुक सकती हैं, किंतु क्रियाके साथ उनका मेल नहीं वैठता। वह उन्हें हमेशा पाशविक और गिरानेवाली लगती है। स्त्रियां इस वातको जानती हैं परंतु पुरुष-को इस बातपर विश्वास करना कठिन लगता है; पर यह है विलकुल सत्य।

असाधारण एक ऐसा शव्द है जिसे तुम किसी भी ऐसी चीज-पर चिपका सकते हो जो घटिया और मामूली न हो। इस तरह प्रतिभा असाधारण है, आध्यात्मिकता और उच्चादर्शोंके अनुसार जीवन वितानेका प्रयास भी असाधारण है। स्त्रियोंमें भौतिक शुचिता-की प्रवृत्ति असाधारण नहीं है, यह काफी सामान्य है। और इसमें एक वहुत ऊंचा नारी प्ररूप आ जाता है।

मन विचार और वोधका आधार है, हृदय प्रेमका आधार है और प्राण कामनाका — लेकिन यह बात मानसिक प्रेमके अस्तित्वको कैसे झुठला सकती है? जैसे मनपर भावनाओं अथवा प्राणके संवेदनों-का आक्रमण हो सकता है उसी तरह हृदयपर भी मनका अधिकार हो सकता है, यह भी मानसिक शक्तियोंद्वारा परिचालित हो सकता है।

एक प्राणिक प्रेम होता है और एक भौतिक प्रेम। यह संभव है कि प्राण प्रेमके विना नाना प्रकारके प्राणिक कारणोंसे नारीकी कामना — उदाहरणके लिये, दूसरेपर अधिकार या स्वामित्व करने-की वृत्तिके कारण, अपने प्राणका पोषण करनेके लिये नारीकी प्राणिक शक्तिसे कुछ खींचनेके लिये, प्राणिक शक्तियोंके आदान-प्रदानके लिये, अपने मिथ्याभिमान या पीछा करनेकी शिकारी वृत्तिको संतुष्ट करने-के लिये आदि (यह सव पुरुषकी दृष्टिसे है परंतु स्त्रीके भी अपने प्राणिक हेतु होते हैं)। इसे प्रायः प्रेम कहा जाता है परंतु यह केवल प्राणिक कामना है, एक प्रकारकी काम-वासना है। हां, यदि हृदयकी भावनाएं जाग पड़ें तो यह प्राणिक प्रेम वन जाता है — एक मिश्रित चीज जिसमें इनमेंसे कोई या फिर सभी हेतु वल-वान होते हैं, फिर भी प्राणिक प्रेम।

भौतिक प्रेम भी हो सकता है, सौंदर्यका आकर्षण, भौतिक सेक्स-अपील या ऐसी कोई और चीज जो हृदयकी भावनाओंको जगाती है। अगर यह न हो तो भौतिक आवश्यकता ही सब कुछ होती है और यह निरी वासना है, उससे बढ़कर कुछ नहीं। लेकिन भौतिक प्रेम संभव है।

इसी तरह मानसिक प्रेम हो सकता है। यह अपने आदर्शको दूसरेके अंदर पानेके प्रयाससे उठता है या फिर किसी प्रबल मानसिक आवेग, श्लाघा या विस्मय या मनके साथीके लिये खोज, अपनी प्रकृतिके पूरक, सहधर्मी, मार्गदर्शक और सहायक, नेता और गुरु आदिकी खोज या अन्य सैकड़ों मानसिक हेतुओंसे भी उठ सकता है। अपने-आपमें यह प्रेम नहीं होता यद्यपि बहुधा यह इतना तीव्र होता है कि इसे प्रेमसे अलग नहीं जाना जा सकता। यह कई बार जीवनकी बलि चढ़ाने या संपूर्ण आत्म-त्यागतक ले जाता है। लेकिन जब यह हृदयकी भावनाओंको जगाता है तो यह बहुत सशक्त प्रेम-तक ले जाता है जो फिर भी अपने मूल और प्रधान गुणके कारण मानसिक ही रहता है। सामान्यतः मन और प्राण, दोनों एक साथ हो जाते हैं। लेकिन यह मेल भौतिक क्रिया और उसके साथकी चीजोंकी ओर अनिच्छा या स्पष्ट अरुचिके साथ भी रह सकता है। निस्संदेह, यदि पुरुष दबाव डाले तो ज्यादा संभावना यही है कि स्त्री झुक जायगी लेकिन यह, जिसे "हृदय-विरोधी" कहते हैं, ऐसी चीज होगी जो उसके संवेदनों और गहरी सहज-वृत्तियोंसे उलटी होगी।

ज्ञानशून्य मानस-शास्त्र ही सब चीजोंको यौन प्रयोजन और यौन आवेगका ऋणी मानता है।

(सेंटिनरी वोल्यूम २४, १५२५-२७)

स्त्रियों और पुरुषोंके बारेमें कुछ प्रश्न

१५.१.३५

क्या यह सच नहीं है कि स्त्रियां पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक ग्रहण-शील और चैत्य होती हैं?

श्रीअरविन्द: बकवास! न अधिक ग्रहणशील और न अधिक वातोन्मत्त (हिस्टीरिया ग्रस्त)। मैं देखता हूं कि पुरुष इस चीजमें भी उनकी बराबरी कर सकते हैं। यह ठीक है कि वे ज्यादा आसानीसे भूख-हड़तालकी घोषणा कर देती हैं—अगर तुम भी गांधीकी तरह इसे उनके चैत्यका (आत्म-शक्ति) लक्षण मानो। लेकिन अब असहयोगने पुरुषोंसे उनकी यह हीनता भी हर ली है।

१९-१-३५

एक डॉक्टर लिखता है कि मध्यकालीन यूनान और रोममें स्त्रियोंको बहुत स्वाधीनता प्राप्त थी और उन्हें ज्यादा अच्छा प्रशि-क्षण मिलता था। फिर भी उन्होंने कोई विशिष्ट कार्य नहीं किया। उसके अपने पेशेमें यद्यपि सत्रहवीं शतीसे ही बोलोना, नेपल्स आदिके विख्यात विश्व-विद्यालयोंमें स्त्रियां प्राध्यापक तो रह चुकी हैं परंतु उन्होंने अपने विशेष विज्ञानको आगे बढ़ानेके लिये कुछ नहीं किया। चित्रकला, संगीत, साहित्य आदिके क्षेत्रमें रोजा बोनरके सिवा किसीने अपना स्थान नहीं बनाया और उसे भी दाढ़ी मुंडाकर पुरुषों जैसा वेश पहनना पड़ता था।

श्रीअरविन्द: यूनानमें 'हिटेरी' के सिवा सभी स्त्रियां घरकी

बांदियां हुआ करती थीं और उन्हें भी रिझानेकी शिक्षा दी जाती थी। रोममें नारीकी सबसे बड़ी प्रशंसा यह थी कि वह "घरपर रहकर ऊन कातती है।" केवल साम्राज्यके थोड़े-से समयमें वह कुछ ज्यादा स्वतंत्र रही थी लेकिन उसे पुरुषकी समानतामें तो कभी नहीं रखा गया। तुम्हारा चिकित्सक या तो ज्ञानशून्य था या फिर यूं ही वेपरकी उड़ा रहा था।

क्या तर्क है ! कुछ अपवादिक स्थितियोंसे युगोंके अभ्यासका विरोध। फिर शासन, सरकार, व्यापार, जिन चीजोंमें स्त्रियोंने अपने-आपको पुरुषोंके बराबर और उनसे ज्यादा निरंतर रूपसे योग्य सिद्ध किया है ? क्या इन चीजोंके लिये दिमागकी जरूरत नहीं पड़ती ? क्या कोई भी मूढ़ इन्हें कर सकता है ?

निश्चय ही कोई इस बातसे इंकार नहीं कर सकता कि रोग और पीड़ाके समय उनका कोमल स्पर्श ही सुख देता है।

श्रीअरविन्द : इसका अर्थ है कि पुरुषोंने उनसे मुख्य रूपमें यही मांग की थी कि वे उनकी दासियां, उपचारिकाएं, रसोइया, बच्चे पैदा करनेवाली और उनकी देखभाल करनेवाली बनें, और उनकी काम-लिप्साको तुष्ट करें। उनके जीवनका यही धंधा और लक्ष्य रहा है और उनकी प्रकृतिने अपने-आपको इसके अनुकूल बना लिया है। उन्होंने इसके अतिरिक्त और जो कुछ प्राप्त किया है वह गौण है ... उनपर रखे गये जूएके बावजूद है। और फिर पुरुष बड़प्पनकी हंसी हंसकर कहता है कि यह सब नारी प्रकृतिकी हीनता-के कारण हुआ है, उसपर डाले गये भारके कारण नहीं।

स्त्री-पुरुषमें फर्क चाहे किसी कारण क्यों न हो पर इस बातका नहीं किया जा सकता कि स्त्रियां प्रेमके लिये अपने-आपको ज्यादा पूर्ण रूपमें और ज्यादा सरलतासे मिटा सकती हैं।

श्रीअरविन्द : उन्हें युगोंसे इसके लिये प्रशिक्षित किया गया है—इसीलिये अधीनता, अपने-आपको मिटाना, पुरुषोंकी दयापर निर्भर रहना ही उनके भाग्यमें रहा है—इसीने उन्हें यह सिखाया है। लेकिन इसने उनमें एक और प्रकारका अहं ला दिया है जो उनके लिये आध्यात्मिक मार्गका रोड़ा बनता है—वह अहंकार जो रूठने और भूख-हड़ताल करनेके पीछे होता है।

क्या यह कहा जा सकता है कि चूंकि स्त्रियां मस्तिष्ककी अपेक्षा हृदयमें अधिक निवास करती हैं इसलिये उनका मार्ग ज्यादा सुगम है?

श्रीअरविन्द : ये सब सुस्पष्ट दृढ़ कथन केवल मानसिक कथन होते हैं और ये मानसिक कथन इतने अधिक सुस्पष्ट होते हैं कि सत्य नहीं हो सकते—दर्शन और विज्ञानने यह खोज करना शुरू कर दिया है। जीवन और सत्ता इसके लिये बहुत ज्यादा जटिल है।

मैंने यहां देखा है कि कुछ स्त्रियां केवल अपने पतिके प्रेमके कारण ही अनंतकी खोजमें निकल पड़ीं। लेकिन जब पति संदेह और अवसादके शिकार होते हैं तब वे बड़े आरामसे, बड़े विश्वासके साथ भगवान्‌की गोदमें बैठी रहती हैं।

श्रीअरविन्द : हे भगवान्! कैसा सुखकर स्वप्न है!

ऐसा मालूम होता है कि योगमें स्त्रियोंको एक फायदा तो है ही। उनमें सेक्स इतना प्रबल नहीं होता जितना पुरुषोंमें।

श्रीअरविंद : कोई सार्वभौम नियम नहीं है। स्त्रियां भी पुरुष-

की तरह या उससे भी बढ़कर कामुक हो सकती हैं। लेकिन काफी स्त्रियां ऐसी हैं जिन्हें सेक्स पसंद नहीं है परंतु ऐसे पुरुष बहुत कम हैं, लाखों-करोड़ोंमें शुकदेव एक ही हैं परंतु डिआना या पाल्लास एथिनी बहुत हैं। कुमारी सचमुच एक नारीसुलभ धारणा है, पुरुष शाश्वत कौमार्यके विचारसे ही कतराते हैं। यदि पुरुष उनपर थोप न दें तो बहुत-सी स्त्रियोंके अंदर कामुकता जागेगी ही नहीं, लेकिन यह बात बहुत-से तो क्या, किसी पुरुषके बारेमें नहीं कही जा सकती। लेकिन चित्रका एक दूसरा पहलू भी है। शायद स्त्रियोंमें भौतिक सेक्सकी भावना पुरुषकी अपेक्षा कम होती है लेकिन प्राणिक सेक्स? अधिकृत होनेकी भावना आदि?

फिर रामकृष्ण हमेशा कामिनी-कांचनसे बचनेके लिये क्यों कहा करते थे? बुद्ध भी कम कठोर न थे।

श्रीअरविंद: यह एक पुराना तपोमय भाव है। यह पुरुषोंकी अत्यधिक कामुकतासे पैदा होता है। उन्हें स्त्रीमें नरकस्य द्वारम् दिखायी देता है क्योंकि यह द्वार स्वयं उनके अंदर पूरी तरह खुला पड़ा रहता है। लेकिन वे सारा दोष स्त्रियोंके सिर मढ़ना पसंद करते हैं।

(जन्नतसे आदमके निकाले जानेके बारेमें)

यह सेक्सके कारण नहीं, नारीकी नये अनुभवों और ज्ञानके लिये इच्छाके कारण हुआ था।

माताजी कहती हैं कि स्त्रियां प्राणिक और भौतिक चेतनामें पुरुषोंकी अपेक्षा ज्यादा बंधी हुई नहीं होतीं। इसके विपरीत चूंकि उनमें पुरुषोंका गर्वीला मानसिक आडंबर नहीं होता इसलिये उनके लिये अपनी चैत्य सत्ताको खोजना और उसके द्वारा मार्ग-दर्शन पाना ज्यादा आसान होता है।

श्रीअरविंद : निस्संदेह, वे अपने चैत्य सत्यको ज्यादा आसानीसे खोज सकती हैं लेकिन यह काफी नहीं है, यह पहला कदम है। दूसरा कदम है चैत्यमें निवास करना, तीसरा है चैत्यको अपनी सारी सत्ता-का शासक बनाना। चौथा है मनके परे उठ जाना। पांचवां है उस परेकी चीजको निम्न प्रकृतिमें उतार लाना। मैं यह नहीं कहता कि यह सब हमेशा इसी क्रममें होता है, परंतु यह सब करना है जरूरी।

आप स्वीकार करेंगे कि पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां अधिक अंतर्भास प्राप्त करती हैं?

श्रीअरविंद : हां, यह तो ठीक है परंतु वह हृदय या प्राणमय मनका अंतर्भास होता है, दिव्य अंतर्भास नहीं।

चूंकि वे प्राणमें निवास करती हैं अतः मेरा ख्याल है साधना-में उन्हें कठिनाइयां भी कम होती होंगी।

श्रीअरविंद : हर्गिज नहीं। प्राणमें निवास करनेसे चीजें ज्यादा सरल कैसे हो सकती हैं? योगमें प्राण ही कठिनाइयोंका स्रोत है। पुरुषोंकी कठिनाइयां शुद्ध रूपसे मानसिक नहीं होतीं। वहां भी प्राण ही होता है — हां, पुरुष भगवान्‌के स्पर्श या दबावसे प्राणकी रक्षा करनेके लिये बुद्धिको बुला लेते हैं। स्त्रियां इसी कामके लिये प्राणमय मनको बुलाती हैं।

'न'ने अपनी पुस्तकमें लिखा है : "नारीकी सारी सत्ता वह जिस चीजपर केंद्रित हो उसके साथ चिपट जाती है। पुरुषकी दृष्टि इतनी ज्यादा नहीं मिल पाती। निष्ठा नारीकी प्रकृति और उसका आदर्श है।"

श्रीअरविंद : यह इसपर निर्भर है कि वह किस भावके साथ केंद्रित है। एक चैत्य और आध्यात्मिक भाव होता है और दूसरा पुनरुद्धार-वंचित प्राणिक भाव। इस तरहका प्राण बहुत बड़ी कठिनाइयां उपस्थित करता है। प्रभुत्व प्राप्त करनेकी इच्छाका मतलब है प्रचंड प्राणमय अहंकार। प्रचंड अहंकार आध्यात्मिक जीवनमें कैसे सहायक हो सकता है?

मेरा ख्याल है कि अगर निष्ठाको उच्चतर और दिव्यतर चीजोंकी ओर बदला जा सके तो उसका रास्ता ज्यादा आसान हो सकता है।

श्रीअरविंद : यह निष्ठा है क्या? अगर स्त्री प्राणकी ओरसे हटकर आध्यात्मिक और चैत्यकी ओर लौटे (प्राण अपने-आपको उपलब्धिका एक यंत्र बना ले) तो तुम्हारी बात ठीक हो सकती है। पर सारी समस्या तो यही है।

प्राचीन कालसे ही मनु आदिने स्त्रियोंको अधीनस्थ स्थिति स्वीकार करना सिखाया। क्या इसका यह कारण है कि पुरुष ज्यादा कामुक है? शायद यह आरोप हमारे लिये कुछ ज्यादा ही कठोर होगा।

श्रीअरविंद : इसका कारण है पुरुषकी स्वामी बनने और स्त्रीको अपने अधीन रखनेकी वृत्ति — हिटलर और मसोलिनी वृत्ति। सेक्स एक और उद्दीपक बन जाता है — उससे ज्यादा कठोर नहीं है जितनेके तुम अधिकारी हो।

और फिर, कहा जाता है कि नारीके जीवन और उसकी चेतनाका केंन्द्र प्राणमें है जिसका स्वभाव ही जीवको धरतीकी ओर खींचना है।

श्रीअरविंद: स्त्रीका भौतिक या प्राणमें निवास इसका कारण नहीं है। पुरुषका प्राण और भौतिकमें निवास ही उसे अपने मार्गका रोड़ा पानेका कारण है। स्त्री भी उसे, अपने मार्गमें बाधक पाती है और वह आसानीसे उसे 'नरकस्य द्वारम्' कह सकती है। यह कल्पना कि पुरुष स्त्रीकी अपेक्षा प्राणिक और भौतिकमें कम निवास करता है सच्ची नहीं है। वह प्राणिक और भौतिक उद्देश्योंके लिये बुद्धिका अधिक उपयोग करता है। बस इतना ही।

तो फिर क्या हम बुद्ध, रामकृष्ण आदिद्वारा बतायी गयी स्त्रियोंसे दूर रहनेकी बातको उचित ठहरा सकते हैं? आखिर, तत्त्वतः यहां भी क्या वही बात काम नहीं कर रही क्योंकि प्राणिक संबंध-पर तो प्रतिबंध है, फिर थोड़े-से शब्दोंके आदान-प्रदानके सिवा कुछ नहीं बच रहता?

श्रीअरविंद: तो फिर सच्चे (तथाकथित नहीं) चैत्य और आध्यात्मिक तौरपर सेक्सको भूल जानेके बारेमें क्या कहोगे? संबंधको सीमित रखना पड़ता है क्योंकि अन्यथा सेक्स हमेशा आगे टपक पड़ता है। तुम्हें ठीक तौरपर प्राणके ऊपर रहनेका नियंत्रण दिया जाता है। बुद्ध निर्वाणके पक्षमें थे, और यदि तुम निर्वाण-की तैयारीमें हो तो फिर किसीसे संबंध रखनेका लाभ ही क्या? रामकृष्णने उस कालमें अलग-थलग रहनेके लिये कहा है जब आदमी आध्यात्मिक दृष्टिसे कच्चा हो — जब वह पक जाय और सेक्सका दास न रहे तब मिलने-जुलनेपर उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की।

साधक-साधिकाओंका संबंध

यहां साधक और साधिकामें केवल एक प्रकारके संबंधकी अनुमति दी जा सकती है और यह वही संबंध है जो साधक-साधक या साधिका-साधिकाके बीच होता है — एक ही योगमार्गका अनुसरण करनेवाले, माताजीके बच्चोंके बीच मैत्रीका संबंध।

*

इसका मतलब है कि तुम एक-दूसरेके साथ साधकोंका संबंध रख सकते हो, सद्भावना और मैत्रीपूर्ण संबंध, लेकिन कोई विशेष प्राणिक प्रकारका संबंध नहीं। अगर कोई ऐसा व्यक्ति है जिससे तुम इस प्रकारके प्राणिक संबंधके उभरे बिना नहीं मिल सकते, तो उसके साथ न मिलना उचित होगा।

*

रही बात सब कुछ भगवान्की ओर मोड़ देनेकी, तो यह पूर्णताकी सलाह है और उन लोगोंके लिये है जो सामान लेकर नहीं चलना चाहते। वरना स्त्री-पुरुष या स्त्री-स्त्रीके बीच संबंधका निषेध नहीं है बशर्ते कि वह सच्ची चीज हो और उसमें सेक्स न आ जाय, और यह भी कि वह तुम्हें अपने मार्गसे भटका न दे। अगर केंद्रीय लक्ष्य मजबूत है तो वह काफी है...। जब मैंने व्यक्तिगत संबंधकी बात की तो निश्चय ही मेरा मतलब शुद्ध उदासीनता न था, क्योंकि उदासीनतासे कोई संबंध नहीं बनता। वह बिलकुल संबंधहीनताकी ओर ले जाती है। जरूरी नहीं है कि भावपूर्ण मैत्री बाधा ही हो।

(सेंटिनरी वोल्यूम २३, ८१६-१७)

*

ध्यान रहे कि कानूनके अनुसार और कम-से-कम सिद्धांत-रूप-में, अन्य प्राचीन प्रजाओंके विपरीत, प्राचीन भारतमें नारियोंको नागरिक अधिकारोंसे वंचित नहीं रखा गया; यद्यपि व्यवहारमें यह समानता, कुछ अपवादोंको छोड़कर, पुरुषके प्रति सामाजिक अधीनता और घरेलू काम-काजके कारण नगण्य-सी हो गयी थी। फिर भी बचे हुए आलेखोंमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहां स्त्रियां केवल रानियां और प्रशासक ही नहीं थीं, उनका युद्ध-क्षेत्रमें होना भी भारतीय इतिहासमें सामान्य बात है, बल्कि मौर संस्थाओंमें चुने हुए प्रति-निधियोंके रूपमें भी रही हैं।

(सेंटिनरी वोल्यूम १४, ३४८-४९)

ब्रह्मचर्य

अंतःस्थित शक्तिको बढ़ानेकी और उसे ऐसे उपयोगोंमें लानेकी जिनसे उसे धारण करनेवाले व्यक्तिको या मानवजातिको लाभ हो, पहली और सबसे आवश्यक शर्त है ब्रह्मचर्यका अभ्यास। मनुष्यकी सारी शक्तिका एक भौतिक आधार होता है। यूरोपीय जड़वादके द्वारा की गयी भूल यह है कि वह भौतिक आधारको ही सब कुछ मान लेता है और उसे शक्तिका मूलस्रोत समझनेकी गड़बड़ कर बैठता है। जीवन और प्राण-शक्तिका मूलस्रोत भौतिक नहीं, अपितु आध्यात्मिक है, किंतु जिस आधारशिला, नींवपर जीवन और शक्ति प्रतिष्ठित एवं क्रियाशील है, वह भौतिक है। प्राचीन हिंदू कारण और प्रतिष्ठा — सत्ताके ऊपरी और निचले छोरों — के बीच-के भेदको स्पष्ट रूपसे समझते थे। पृथ्वी या स्थूल भौतिक तत्त्व प्रतिष्ठा है और कारण है ब्रह्म या आत्मा। भौतिक तत्त्वका आध्यात्मिक सत्तामें उत्कर्षण ही ब्रह्मचर्य है, क्योंकि दोनोंके सम्मिलनसे वह शक्ति जो एक (ब्रह्म या आत्मा) से निःसृत होकर दूसरे

(भौतिक तत्त्व) को उत्पन्न करती है, वृद्धिको प्राप्त होती और स्वयं-को चरितार्थ करती है।

यह ब्रह्मचर्यका तात्विक सिद्धांत है। इसका क्रियात्मक उपयोग निर्भर होता है शक्तिके मानव आधारकी भौतिक और मनोवैज्ञानिक रचनाके ठीक-ठीक ज्ञानपर। मूलभूत भौतिक इकाई है रेतस्, जिसमें कि मनुष्यके अंतःस्थित तेजस्, अर्थात्, ऊष्मा और प्रकाश और विद्युत-शक्ति अंतर्हित और छिपे पड़े हैं। सारी ऊर्जा रेतस्में निगूढ़ रूपसे विद्यमान है। यह शक्ति या तो स्थूल भौतिक रूपमें व्यय की जा सकती है या सुरक्षित रखी जा सकती है। समस्त मनोविकार, भोगेच्छा, कामना इस शक्तिको स्थूल रूपमें या एक उत्कृष्ट सूक्ष्मतर रूपमें शरीरसे बाहर फेंककर उसे नष्ट कर देती है। अनैतिक आचरण उसे स्थूल रूपमें बाहर फेंक देता है; अनैतिक विचार सूक्ष्म रूपमें। दोनोंमेंसे प्रत्येक दशामें शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है, और अब्रह्मचर्य जैसे शारीरिक होता है वैसे ही मानसिक और वाचिक भी। इसके विपरीत समस्त आत्म-संयम रेतस्में निहित ऊर्जाकी रक्षा करता है और रक्षाके साथ सदा वृद्धि होती है। किंतु भौतिक शरीरकी आवश्यकताएं सीमित हैं और अतिरिक्त शक्ति-से अवश्य ही उसके एक संचित भंडारका निर्माण होगा जो भौतिक-के अतिरिक्त अन्य किसी उपयोगमें प्रयुक्त होना चाहिये। प्राचीन सिद्धांतके अनुसार रेतस् जल है जो प्रकाश और ऊष्मा और विद्युतसे, एक शब्दमें, तेजस्से परिपूर्ण है। रेतस्का विशेष संचय सर्वप्रथम ऊष्मा या तपस्में परिवर्तित होता है, जो सारे शरीरको प्रदीप्त करता है, और इसी कारण आत्म-संयम और तपस्याके सभी रूप तपस् या तपस्या कहलाते हैं क्योंकि वे ऊष्मा या उस प्रेरक शक्तिको उत्पन्न करते हैं जो शक्तिशाली कर्म और सिद्धिका मूलस्रोत है; द्वितीयतः वह वास्तविक तेजस्, अर्थात्, प्रकाशमें परिवर्तित होता है जो समस्त ज्ञानका मूल उद्गम रूप शक्ति है; तृतीयतः वह विद्युतमें रूपांतरित होता है जो सारे शक्तिशाली कर्मका आधार है, चाहे वह कर्म

बौद्धिक हो या शारीरिक। और फिर विद्युतमें निहित है ओजस् या प्राण-शक्ति जो आकाशसे उत्पन्न होनेवाली मूलभूत शक्ति है। रेतस् जलसे तपस्, तेजस् और विद्युतमें तथा विद्युतसे ओजस्में परिष्कृत होकर शरीरको शारीरिक बल, ऊर्जा और मस्तिष्क-शक्तिसे भर देता है और अपने अंतिम स्वरूप ओजस्के रूपमें ऊर्ध्वगामी होकर मस्तिष्कमें पहुंचता है तथा उसे उस मूल ऊर्जासे अनुप्राणित कर देता है जो जड़ तत्त्वका सबसे परिष्कृत रूप है तथा आत्माके सबसे अधिक निकट है। वह ओजस् ही है जो आध्यात्मिक शक्ति या वीर्यको उत्पन्न करता है, जिसके द्वारा मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान, आध्यात्मिक प्रेम और श्रद्धा, आध्यात्मिक बलको प्राप्त करता है। इसका निष्कर्ष यह है कि हम ब्रह्मचर्यके द्वारा तपस्, तेजस्, विद्युत और ओजस्के भंडारको जितना ही अधिक बढ़ा सकें, उतना ही अधिक हम स्वयंको शरीर, हृदय, मन और आत्माके कार्योंके लिये पूर्ण एवं विशुद्ध शक्तिसे भर देंगे।

मानव आत्मा-संबंधी यह दृष्टि ही वह समूचा ज्ञान नहीं था जिसपर प्राचीन हिंदुत्वने अपने शिक्षा-संबंधी अनुशासनको प्रतिष्ठित किया था। इसके अतिरिक्त उसका यह भी मत था कि समस्त ज्ञान भीतर है और शिक्षाका कार्य उसे बाहरसे शनैः-शनैः मनके भीतर डालना नहीं वरन् जाग्रत् कर भीतरसे बाहर प्रकट करना है। मानव प्रकृतिकी रचना प्रकृतिके तीन तत्त्वों — सत्व, रजस् और तमस् — से हुई है; ये विश्वात्मक कर्मके बोध, क्रियाशीलता और निष्क्रियता-मूलक तत्त्व हैं, जो अपने असंख्य रूपोंमेंसे एकमें ज्ञान, इच्छा और अज्ञानके रूपमें प्रकट होते हैं। तमस् शारीरिक और मानसिक प्रकृतिकी जड़ता या निष्क्रियता है जो अंतःस्थित ज्ञानको धूमिल कर देती है तथा अज्ञान, मानसिक जड़ता, मांद्य, विस्मृति, अध्ययनके प्रति अरुचि, वस्तुओंको समझने और उनके भेदको पहचाननेकी असमर्थताको जन्म देती है। रजस् एक अनियंत्रित क्रिया है जो तीव्र कामना, आसक्ति, पूर्वधारणा, मानसिक पक्षपात तथा मिथ्या

विचारोंके द्वारा ज्ञानको आच्छादित कर देती है। सत्व एक प्रकाश है जो भीतर छिपे हुए ज्ञानको उद्घाटित करता और उसे उपरि-पृष्ठपर ले आता है, जहां निरीक्षण उसे ग्रहण कर सकता और स्मृति स्वयंमें अंकित कर सकती है। ज्ञानात्मक शक्तिकी रचना-संबंधी इस धारणाने — तमस्को हटाना, रजस्को संयमित करना और सत्वको जाग्रत् करना — इसे शिक्षककी मुख्य समस्या बना दिया। उसे विद्यार्थीको भीतरसे प्राप्त होनेवाले ज्ञानके प्रकाशके प्रति ग्रहणशील बननेके लिये प्रशिक्षित करना होता था। रजस्को संयत करनेका कार्य साधित किया जाता था एक कठोर नैतिक अनु-शासनके द्वारा, जो बौद्धिक स्वेच्छाचारिता और अहंकार तथा तीव्र मनोवेगोंके आवरणसे मुक्त, एक शांत, प्रसन्न, ग्रहणशील मानसिक स्थितिको उत्पन्न करता है, — यही था वह ब्रह्मचारीका प्रसिद्ध अनुशासन जो आर्य संस्कृति और आर्य नैतिकताका आधार था; और शिक्षाग्रहणकालमें जब कि शिष्यको मानवके द्वारा अबतक पहलेसे ही अधिकृत की जा चुकी सुनिश्चित ज्ञानकी राशि या यथार्थ विचार स्पष्ट किये और कंठस्थ कराये जाते थे, उस समय शिक्षकके प्रति कठोर मानसिक वशवर्तिताके द्वारा मिथ्या विचारोंके हस्तक्षेपको दूर करनेका प्रयत्न किया जाता था। तमस्के बहिष्कारका कार्य साधित किया जाता था नैतिक पवित्रताके अनुशासनके द्वारा, जो शिष्यकी मन-प्राण-शरीरात्मक प्रकृतिमें तेजस् और विद्युतकी शक्तिको जाग्रत् करता था और तपस्याकी शक्तिके द्वारा उसे मानसिक शक्ति और स्पष्ट ज्ञान एवं विचारको धारण करनेका अभ्यस्त बनाता था। ज्ञानको जाग्रत् करनेका कार्य पुनरावृत्ति, ध्यान और विचार-तर्ककी त्रिविध पद्धतिके द्वारा सक्रिय रूपसे साधित किया जाता था। आवृत्तिका प्रयोजन था मनके संस्कारग्राही भागको शब्द (अर्थात्, विचारोंको प्रकट करनेवाले शब्दों) से परिपूर्ण कर देना, ताकि अर्थका स्वतःएव भीतरसे उदय हो: कहनेकी आवश्यकता नहीं कि एक यंत्रवत् पुनरावृत्ति संभवतः वह परिणाम उत्पन्न नहीं कर

सकती थी। होनी चाहिये वह प्रसन्न, अविचल ग्रहणशीलता और शब्द या वस्तुपर मनके चिंतनशील भागकी वह तल्लीनता जो प्राचीन भारतीयोंके अनुसार ध्यानका अर्थ था। किसी भाषाका अध्ययन करते हुए हम सबने यह अनुभव किया है कि एक ग्रंथको समझनेका कठोर प्रयत्न करते समय जो कठिनाइयां असमाधेय प्रतीत होती थीं वे पुस्तकको थोड़ी देरके लिये अपने मनसे दूर कर देनेपर बिना पुस्तक या अध्यापककी सहायताके ही अचानक विलीन हो जाती हैं और स्पष्ट बोधका उदय होता है। हममेंसे कइयोंने कुछ समयके विरामके पश्चात् किसी भाषा या विषयके अध्ययनको पुनः आरंभ करनेमें भी यह देखकर विचित्रताका अनुभव किया है कि हमने उसे आरंभ किया तबकी अपेक्षा अब हम उसे कहीं अधिक अच्छी तरह समझ लेते हैं, ऐसे शब्दोंका अर्थ जान लेते हैं जिनसे पहले कभी हमारा परिचय नहीं था और हम उन वाक्योंको भी समझ सकते हैं जो अध्ययन स्थगित करनेसे पूर्व हमारी बुद्धिको चकरा देते। इसका कारण यह है कि हमारे अंतःस्थित ज्ञाताका ध्यान उस विषयमें एकाग्र हो जाता है और वह विराम-कालमें उस विषयके संबंधमें ज्ञानके अंतःस्थित स्रोतसे ज्ञान प्राप्त करनेके प्रयत्नमें व्यस्त रहता है। यह अनुभव केवल उन्हीं लोगोंके लिये संभव होता है जिनकी प्रकृतिका सात्विक या प्रकाशात्मक तत्त्व बौद्धिक स्पष्टता और गंभीर अध्ययनके अभ्यासके द्वारा प्रबल रूपमें जाग्रत् हो चुका है अथवा सचेतन प्रयत्नपूर्वक या अनजाने ही समुचित रूपमें कार्य करनेके लिये प्रशिक्षित हो चुका है। सात्विक विकासकी सर्वोच्च पराकाष्ठा तब होती है जब हम प्रायः या सदा ही बाह्य साधनों — अध्यापक या पुस्तक, व्याकरण और शब्दकोष — के बिना काम चला सकते और किसी विषयको अधिकांशमें या पूर्णतः अपने भीतरसे ही सीख सकते हैं। किंतु यह योगाभ्यासके सफल अनुसरणके द्वारा केवल योगीके लिये ही संभव है।

('भारतीय मस्तिष्क'से)

मूल्य रु. १.५०